जयति व्रज जहां जन्म तू लिया
रह रमा[1] अतः सर्वदा यहीं ।
दरश दे पिया ! हैं त्वदीय[2] हम्
जिय अधार हो ढूँढती तुझे ॥

२—शरदुदाशये साधुजातस
त्सरसिजोदर श्री मुषादृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥

*

शरद काल के ताल में खिले
कमल नैन से मारता हमें ।
सुरतनाथ ! हम्ऽशुल्कदासियां[3]
वरद ! क्या नहीं ? मारना य है ॥

३—विषजलाप्यया व्याल राक्षसा
द्वर्षमारुताद्वै द्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयादृषभ
ते वयं रक्षिता मुहुः ॥

*

सविषताल[4] से कालव्याल से
अनिल[5] मेघसे विद्युवेग से ।
वृषभ[6] व्योम से विश्वभीति से
रिषभ[7] ! तू हमें रक्षता सदा ॥

४—न खलु गोपिका नन्दनो
भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥

*

न खलु गोपिकापुत्र तू सखे !
अखिल विश्व का साक्षि रूप है ।
स्तुति विरंचि से विश्व[8] त्राण को
उदय तू हुआ वृष्णिवंश में ॥

५—विरचिताभयं वृष्णिधुर्यते
चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
कर सरोरुहं कांत कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥

*

अभय कर दिये शर्ण जो हुये
त्रसित[1] संसृति चर्ण जो गहे ।
धृत रमाकरो कामदा खरो
कर सरोज सो शीश पै धरो ॥

६—व्रजजनार्त्तिहन् वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किंकरीःस्म नो
जलरुहाननं चारु दर्शय ॥

*

हरत पीर तू वीर ! दास की
गरब नाश हो मंद हास से ।
भज सखे ! हमें किंकरीन को
मुखललाम[2] हो श्याम ! दे दिखा ॥

७—प्रणतदेहिनां पापकर्शनं
तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं
कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥

*

शरण आतहीं पापघात जो
पशुन साथ है नाथ लक्ष्मिका ।
नलिनपाद जो फन फनी धरो
रखि उरोज सो काम को हरो ॥

८—मधुरया गिरा वल्गु वाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीरमुह्यती
रधरसीधुनाप्याययस्व नः ॥

*

मधुर बैन से मोद दैन से
बुधमनोज्ञ से[3] कञ्जनैन हो !
सुधि रही नहीं दासियां इन्हें
अधर की सुधा प्याय दे हमें ॥

९—तव कथा मृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।

---

१ श्री लक्ष्मी रहती है । २ तेरी । ३ बिनामोल की दासी । ४ ज़हरीले जलसे । ५ अग्नि । ६ वृषभासुर । ७ हे सर्वोत्तम । ८ विश्व की रक्षा करने के लिये ।

१ जन्ममरण से भय भीत होके । २ सुन्दर । ३ ज्ञानी जनों को प्रिय लगनेवाले ।

श्रवण मंगलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥
*
तव कथा अभी तप्त जीवनी
कविन की कही पापहा सही।
श्रवणमङ्गला श्रीकला भुवि
करत गान हैं पुण्यवान जे ॥

१०—प्रहसितं प्रियप्रेमवीक्षणं
विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥
*
मृदुल हास औ वन बिहार भी
दृग रसाल से सैन मारना।
वचविनोद के हर्त चित्त जे
क्षुभित करत्त है रे छली ! हमें ॥

११—चलसि यद्व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिनसुंदरं नाथ ते पदम्।
शिल तृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥
*
जब चलो कहीं गोचरात हीं
मृदुल कञ्ज से पाद मञ्जु से।
श्रमित होत वे क्रूर पंथ से
विकलता हमें नाथ ! हो यही ॥

१२—दिनपरिक्षये नील कुन्तलै-
र्वनरुहाननं बिभ्रदावृतं।
घनरजस्वलं दर्शयन्मुहु-
र्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥
*
अलक श्याम जो छा रहीं जहां
गउन धूरि से पूरि जो रहा।
तव मुखम्बु सो नित[1] दिनान्त ही
लखि सकाम हो हिय नितान्त ही ॥

१३—प्रणतकामदं पद्मजार्चितं
धरणिमण्डनं ध्येयमापदि।
चरणपङ्कजं शंतमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥
*
प्रणत कामदे [1]पद्मजार्चिते
विपदि ध्येय औ श्रेयरूप जे।
भुवि सुहाग ते पादपद्म वे
उरज पर धरो व्याधिहा सुने ॥

१४—सुरतवर्धनं शोकनाशनं
स्वरितवेणुना सुष्ठुचुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥
*
रति बढ़ात जो शोकघात है
मधुरवादिनी वेणु जो पिये।
इतर राग सब जो भुलात है
अधर रस वही वीर ! दे हमें ॥

१५—अटति यद्भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड़ उदीक्षितां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥
*
[2]विपिनजात जब ना दिखात हो
पल वही हमें युग समान हो।
[3]कलित अलकमूं देखतैं तुम्हें
[4]जड़विधी अहो ! पल्क दृक किये ॥

१६—पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा
नतिविलंघ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥
*
पतिगुरु भ्रातसुत छोड कुल गली
तब समीप हम आगईं छली !
सुघर गीत से मोह जो गईं
तियन को तजै रैन में दई !!

१७—रहसि संविदं हृच्छयोदयं
प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्।

१ सायंकाल के समय।

१ ब्रह्मा जी से पूजित। २ वन। ३ अलकावली युक्त मुख।
४ विधाता जड़ (मूर्ख) है जिसने आंखों के पलक बनादी।

बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते
मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥
*
रहसि वैन जो मैन फाँस हैं
मुख सहास औ दृक विलास को।
उर विशाल भी श्रीनिवास जो
लखि चहैं रती मोह हो अती ॥

१८– व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिन हंत्र्यलं विश्वमङ्गलं।
त्यज मनाक्च नस्त्वतय्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥
*
विपिन व्रज् बसैं क्लेशहा उन्हें
प्रकट तू हुआ विश्वक्षेम ही।
स्व-जनव्याधि को नाश जो करै
तनिक औषधि दे हमें वही ॥

(छन्द वसन्ततिलका)

१९—यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताशनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंश्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥
*
जो पादपद्म रखती हम हैं कुचों पर
डरती हुई अचक जानि कठोर प्यारे ?
उस्से चलो विषम बन नहिँ हो व्यथा क्या ?
हा ! प्राणनाथ ! मति मोहित हो हमारी ॥

अनुष्टुप्

२०—इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपंत्यश्च चित्रधा।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥
तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथ मन्मथः ॥
*
दोहा

गानकलाप प्रलाप यों बहुविधि करि व्रजवाल।
करन लगीं ऊंचो रुदन दरशन हित गोपाल ॥
स्मितयुत सरसिज मुख लसित पीतबसन बनमाल।
मनमथ मनमथ करत तब प्रकटे तहँ नन्दलाल ॥

कन्हैयालाल पोद्दार।

हीरा

प्रायः सभी लोग जानते हैं कि हीरा एक रत्नविशेष है। यह सब रत्नों में अति श्रेष्ठ और बहुमूल्य गिना जाता है और जगत में इसका बड़ा आदर है। सरस्वती के पूर्व अङ्कों में जगद्विख्यात 'कोहनूर' और 'पिट' नामक हीरे का वर्णन सविस्तर लिखा जा चुका है, परन्तु अब इस रत्न के मूलतत्व, उत्पत्ति स्थान, प्राप्ति-विधि, गुण-दोष-परीक्षा, इत्यादि का वर्णन किया ज ता है।

सबसे पहिले यह रत्न आर्यावर्त्त ही से निकला था। अति प्राचीन काल में भारतवासियों ही ने इसके प्रयोग और गुण को जाना था और इसको आदर दिया था। पुराण आदि प्राचीन पुस्तकों में इसके जन्मस्थान प्रत्येक युग में पृथक पृथक लिखे हैं, जिसका वर्णन किसी कवि ने हिन्दी में किया है जो पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत किया जाता है।

छप्पै

भनि कोसल कालिङ्ग देस सत युगहि पूर्ब दिसि।
पुनि हेमज मातंग देस त्रेता उत्तर दिसि ॥
बहुरि पिंड, सौराष्ट्र देस द्वापर पच्छिम दिसि।
अब बेनूज सुरारि देस कलियुग दच्छिन दिसि ॥

भारतवर्ष में सम्भलपुर और गोलकुण्डा की खानैं प्रसिद्ध हैं। इन स्थानों से पहिले बहुत हीरे निकलते थे जो अति श्रेष्ठ और बहुमूल्य होते थे। कहा जाता है कि सत्रहवीं शताब्दी में इन प्रत्येक स्थानों में ६०००० से अधिक लोग काम करते थे। पर अब इन स्थानों में यह रत्न कम निकलने लगा है और आधुनिक समय में अन्य अन्य देशों में भी हीरों की खान निकली हैं जिनका विवरण आगे क्रमानुसार किया जायगा।

यहां पर इतना और लिख देना आवश्यक जान पड़ता है कि उक्त स्थान के हीरे अति उत्तम होते

हैं जो 'पुरानी खान' के कहलाते हैं, और अन्य देशों के हीरे जिनकी खान आधुनिक समय में निकली है, 'नई खान' के कहलाते हैं। यद्यपि नई खान के हीरों का इनके अधिक निकलने से प्रचार बहुत हो गया है, तथापि पुरानी खान के हीरों की अपेक्षा इनका मूल्य और आदर कमही होता है। पुरानी और नई खान की पहिचान केवल अभ्यास से होती है।

मुख्य धर्म्म

हीरे का मुख्य और स्वाभाविक धर्म्म कान्ति और कठोरता है।

(१) कान्ति—जब यह रत्न काट छांट कर बनाया जाता है तो इसमें इतनी चमक दमक इन्द्र-धनुषवत् छटा और विचित्र झलक होती हैं कि अन्य किसी रत्न में उतनी नहीं होती। इसीसे इसका अधिक मान है। इसमें रङ्ग रङ्ग की झलक ऐसी शोभा देती है कि देखते ही बनता है।

(२) कठोरता—यह रत्न कठोर भी इतना होता है कि अन्य समस्त पदार्थों को काट वा खुरच सकता है; पर इसको न तो कोई रत्न और न कोई कठोर से कठोर धातु खुरच सकती है, इसीलिये इसका नाम संस्कृत में बज्र है; किसी ने कहा है—

सकल रतन और आठों धात।
इनते होइ न बज्र विघात॥

यह अपने ही चूरे से खुरचा और काटा जा सकता है। यह कठोर तो इतना है पर यह भञ्जन-शील भी है, अर्थात् प्रहार द्वारा विशेष विशेष स्थानों से टूट जाता है, अर्थात् परत पर प्रहार लगने से इसके परत टूट जाते हैं। इसी भञ्जनशीलत्व धर्म के कारण से इसका चूरा हो जाता है. यह कहावत कि 'हीरा जो घनचोट न टूटे' जैसी ही प्रसिद्ध है वैसी ही भ्रमजनक भी है। इस भ्रम से अनेक बड़े और अमूल्य रत्नों को कभी कभी बड़ी ही हानि पहुंची है। कभी कभी देखा गया है कि तनिक सी ठेस लगने ही से हीरा टूट जाता है। सुतरां "घन चोट न टूटे" को सत्य समझ लेना बड़ी भूल है। यदि यह न टूटता होता तो इसका चूर भी न होता। हां अपनी कठोरता के कारण यह और पदार्थों की अपेक्षा अधिकतर चिरस्थायी है, क्योंकि न तो यह घिसता है और न कोई रासायनिक प्रभाव से इसमें कभी कोई परिवर्तन होता है। यह इसका एक विशेष और अद्भुत गुण है।

रासायनिक धर्म्म

आधुनिक रासायनिक पण्डितों ने परीक्षा करके सिद्धान्त किया है कि इसका मूलतत्व 'अङ्गार' (Carbon) है जैसे काजल। यह प्रचुर ताप देने से भस्म हो जाता है और जो थोड़ी सी राख बच रहती है उसमें किञ्चित मात्र 'दग्ध सितक' (Silica) और लोह का अंश भी पाया जाता है। यह बात पहिले पहिल लावशियर नामक एक फरासीसी रासायनिक पण्डित ने जाना और फिर इसकी पुष्टि एक दूसरे फरासीसी रासायनिक ने, जिनका नाम क्लेवट (Clevet) था, की। उन्होंने ताप द्वारा हीरे और लोहे के योग से स्पात (Steel) बनाया, जो उन्नीसवीं शताब्दी का एक बड़ा भारी आविष्कार गिना जाता है। हीरे की बनावट वा उत्पत्ति के विषय में रासायनिक महानुभावों का अनुमान है कि यह रत्न पृथ्वी के दबाव और इसके आन्तरिक ताप से पार्थिव अङ्गार जम कर बनता है। यह रत्न कई रङ्ग का होता है। पर उन रङ्गों का मूल्य-तत्व क्या है यह अब तक निश्चय नहीं हुआ है।

हीरे को रगड़ने से वा उसमें उष्णता पहुंचाने से तड़ित् उत्पन्न होती है और तेज वा प्रकाश में कुछ देर रखने से यह रत्न अंधेरे में भी चमक देता है। इसके इस विशेष धर्म को रसायन शास्त्र में Phosphorescence कहते हैं, जिसे हिन्दी में हम 'स्फुरकान्ति' कह सकते हैं।

रूप

इसकी पूर्व अवस्था एक कङ्कड़ के समान होती है। जब यह पृथ्वी से खोद कर निकाला जाता है

तब इसमें चमक इत्यादि प्रत्यक्ष नहीं रहती। इस की चमक इसके अन्दर गुप्त रहती है। क्योंकि इसके ऊपर की परत 'पारदर्शक' (Transparent) नहीं होती, और इस खोल के 'उपरि दर्शक' (Opaque) होने के कारण से इसकी स्वच्छता और दमक इत्यादि छिपी रहती है। इस कङ्कड़ रूपी हीरे को साधारण बोलचाल में हीरे का "खड" कहते हैं। इसका रङ्ग साधारणतः भूरा-श्वेत वा पीत-श्वेत, अथवा धुंधला-भूरा वा पीत-भूरा, किम्वा लैंगियां होता है। कभी कभी यह 'खड' हलका हरा वा पिस्ते के रङ्ग का सा वा धानी रङ्ग का भी होता है; परन्तु पिछले रङ्गों का बहुत कम मिलता है। जब यह काट कर बनाया जाता है तब इसमें चमक निकलती है, यही इसकी मुख्य पहिचान है। इसका आदि वा मूल स्वरूप स्फटिकाकार (Crystalized)-अठपहल, किम्वा षटपार्श्व होता है, पर छोटे हीरे बहुधा गोलमिलते हैं।

हीरे के व्यवहार

हीरा अपनी विचित्र चमक, दमक, सुन्दरता और कठोरता के कारण आभूषणों के काम में अधिक आता है, यह सभी लोग जानते हैं। उसके अतिरिक्त और भी बड़े बड़े काम इससे लिये जाते हैं; जैसे पहाड़ वा कठोर भूमि काटने के लिये 'भूविदारक' यन्त्र में लगाते हैं। इससे कांच कट जाता है, यह बात तो सभी जानते हैं। पर ज्ञात रहे कि हीरे की सभी नोक से कांच नहीं काट सकते, हां खुरच सकते हैं, काटनेवाली कनी हीरे की प्राकृतिक नोक ही से एक विशेष रूप में बनाई जाती है जो शीशे को काटती है। यह बात साधारणतः सब को विदित नहीं है। हीरे की कनी कांच पर लिखने, मूर्ति आदि बनाने में अर्थात् शिल्पशास्त्र में बड़े काम आती है।

उत्पत्तिस्थान

ऊपर लिख आए हैं कि सब से पहिले यह रत्न आर्यावर्त में निकला था। हिन्दुस्तान के बहुत स्थानों में हीरे मिलते हैं। हिन्दुस्तान के उत्तरी भाग में १४° अंश उत्तर अक्षांश में पेनार नदी से लगा २५° उत्तर अक्षांश में सोन नदी तक में जो बुन्देलखण्ड में होकर बही है, इसके मिलने के स्थान हैं। और हिन्दुस्तान की दक्खिन दिशा में इसके मिलने के मुख्य स्थान कड़ापा, करनूल और इलोर हैं जो कृष्णा नदी के किनारे मदराज देश में स्थित हैं। इन स्थानों के अतिरिक्त बङ्गाल, पेगू, स्याम और बोर्नियो टापू में भी यह रत्न पाया जाता है। हिन्दुस्तान से बाहरी देशों में जो नई खाने निकली हैं, वे अमेरिका महाद्वीप में ब्राजील देश, कालिफ़ोर्नियां इत्यादि और अफ़्रिका महाद्वीप में किम्बरली, जो ट्रांसवाल राज्य में स्थित है, इत्यादि हैं।

उक्तस्थानों में से केवल मुख्य और प्रसिद्ध खानें ये हैं—

(१) गोलकण्डा - यह दक्खिन में हैदराबाद के राज्य में प्रसिद्ध और पुरानी खान है।

(२) गन्नी और कोलोर—यह गोलकण्डा से सात मञ्जिल पूरब है।

(३) पन्ना—यह प्रसिद्ध देश बुन्देलखण्ड में है।

(४) बङ्गाल देश में सम्भलपुर के पास गोलनदी के किनारे।

(५) बोर्नियो टापू—यह टापू हिन्दुस्तान से दक्षिण-पूरब दिशा की ओर स्थित है।

(६) ब्राजील—यह देश दक्षिण अमेरिका में है।

(७) किम्बरली—अफ़्रिका महाद्वीप के दक्षिण भाग में ट्रांसवाल राज्य का बड़ा प्रसिद्ध स्थान है।

हीरा निकालने की बिधि

ज्ञात रहे कि हीरा प्रायः रेतीली भूमि में मिलता है जो पहाड़ियों में पाई जाती हैं, किम्वा जहां की मट्टी नीली होती है। नदियों के प्रवाह के साथ हीरा अपने उत्पत्तिस्थान से लुढ़क लुढ़क कर बह आता है और स्थान स्थान पर मट्टी में दब कर रह जाता है, जो खोदने पर मिलता है।

(१), (२) ग्रैर (३) स्थानों की भूमि प्रायः रेतीली ग्रैर पहाड़ी है। इन स्थानों में पहाड़ियों की दरारों ग्रैर छिद्रों में, जो एक वा डेढ़ इञ्च चौड़े होते हैं, हीरे पाए जाते हैं। सुतरां जो लोग इसके निकालने का ठीका लेते हैं वे भृत्यों द्वारा उन दरारों से मिट्टी ग्रैर रेती निकलवाया करते हैं। यह मिट्टी एक ग्रंकुशी (ग्रर्थात् ग्रंकुड़ेदार लोहे की शलाका) से निकाली जाती है। जब यह दरार समाप्त हो जाती है, तब उस पहाड़ी को खोदते हैं जब तक कि दूसरी दरार न मिले। ग्रैर जब दरार निकल ग्राती है तो फिर उक्त रीति से रेत ग्रैर मिट्टी उसमें से निकालने लगते हैं। कुछ भृत्य उक्त काम करते रहते हैं ग्रैर कुछ लोग उस खोदी हुई मिट्टी को उठाकर दूसरे स्थान पर लेजाकर संचय करते हैं जो इसी काम के लिये दीवार घेर कर बनाया जाता है। इस गृह में भृत्यों की तीसरी टोली उस संचित मिट्टी को चलनी में डाल कर जल से धोती है। मिट्टी तो बह जाती है, केवल कङ्कड़ रह जाते हैं। उन कङ्कड़ों में से हीरे के 'खड' चुन लेते हैं। उक्त गृह में कई बड़े कर्मचारी, जिन पर विश्वास होता है, नियत रहते हैं। यह लोग ग्रपनी ग्रपनी टोली की जांच करते रहते हैं, कि कहीं कोई व्यक्ति कोई खड न चुरा ले। भृत्य लोग प्रायः नङ्गे काम करते रहते हैं। कई मन मिट्टी धोने पर कहीं एक खड मिलता है।

सम्भलपुर में हीरे गोग्राल नामक नदी की रेत से मिलते हैं। बरसात में जब यह नदी बढ़ती है तो जल के प्रवाह के उद्वेग से हीरों के खड भी बह ग्राते हैं ग्रैर स्थान स्थान पर रेत में दब कर रह जाते हैं। वही खड इस नदी से निकलते हैं। बरसात के समाप्त होने पर जब नदी घट जाती है ग्रैर जल स्वच्छ ग्रैर सुथरा हो जाता है, तब लोग प्रायः हीरा निकालने जाते हैं। यह काम प्रायः दिसम्बर मास के ग्रन्त में प्रारम्भ होता है। सहस्रों मनुष्य हीरे की खोज में जाते हैं। उनके साथ थोड़े से ऐसे पुरुष होते हैं जो इसमें निपुण ग्रैर विज्ञ होते हैं। वे लोग उक्त नदी के किनारे किनारे स्थान स्थान की परीक्षा करते जाते हैं। जहां उन्हें खड प्राप्त होने की कुछ ग्राशा होती है वहां नदी में बाँध बाँध कर छोटा सा घेरा बना लेते हैं ग्रैर उसमें से जल निकलवा देते हैं। फिर वहां की भूमि को दो तीन फोट तक गहिरा खोद कर उसकी मिट्टी दूसरे स्थान पर ले जाकर उक्त प्रकार से धो धो कर खड छांट लेते हैं। वह लोग हीरे की खोज करते करते नदी के सोत तक चले जाते हैं।

पर ग्रब यहां हीरे बहुत कम मिलते हैं, ग्रैर व्यय ग्रधिक पड़ जाता है। यहां के हीरे ग्रति उत्तम ग्रैर सर्वगुणसम्पन्न होते हैं। कहा जाता है कि 'कोहनूर' नामक हीरा यहीं से निकला था।

हीरे की रङ्गत पर जिस रङ्ग की भूमि वा मिट्टी से वह निकलता है उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। प्रायः जिस रङ्ग की मिट्टी से खड निकलेगा वहां के हीरे में उस रङ्ग की प्रधानता वा झलक ग्रवश्य रहेगी। हीरा बहुत करके काली मिट्टी में से निकलता है।

ब्राजील में उक्त दोनों प्रकार से हीरा निकलता है। कहीं तो वहां की नदी में से मिट्टी निकाल कर उसे एक बड़ी चलनी में रखते हैं ग्रैर पानी से उसे धोते हैं; मिट्टी बह जाने पर जो कङ्कड़ रह जाते हैं उनमें से फिर खड छांटते हैं।

कहीं कहीं सूखी भूमि की मिट्टी को छान छान कर कङ्कड़ों में से खड छांटते हैं।

पहिले पहिल जब यहां स्वर्ण निकाला जाता था, तब इन खडों को यहां के भृत्य ग्रज्ञानतावश गिट्टक की तरह लड़कों को खेल में दिया करते थे। ग्रैर ग्रन्य कङ्कड़ों से इनको कुछ ग्रधिक सुन्दर देख कर इनकी गोटी बना कर खेला करते थे, पर यह न जानते थे कि यह एक ग्रमूल्य रत्न है। सन् १७२७ ईसवी में एक लोबो नामक व्यक्ति जो वहां स्वर्ण-क्षेत्र में काम करता था ग्रैर जो हिन्दुस्तान

में भी रह चुका था जहां उसने हीरे के खड देखे थे, इन खडों को हिन्दुस्तानी हीरों के खड के सदृश देख कर उनमें से कुछ खड लिसबन में ले गया था। वहां जा कर प्रगट हुआ कि वे हीरे थे। पर बिलायत के रत्नकारों (जौहरियों) ने उनका हीरा होना स्वीकार नहीं किया था, क्योंकि उनको भय था कि यदि उन्हें वे हीरा स्वीकार कर लेंगे तो हिन्दुस्तानी रत्नों, में जो उनके पास हैं, उन्हें घाटा हो जायगा। पर साहसी लोग कब छोड़ते हैं। कुछ खड लेकर लोग हिन्दुस्तान आए और यहां यह हीरे के समान अच्छे दामों पर बङ्गाल में बिके। फिर क्या था। उक्त हीरकक्षेत्र में लखूखा लोग हीरे की खोज में गए और एक सौ सालीस वर्ष तक बहुतायत से हीरा मिलता रहा। पहिले पचास साल में तो १८००००००० रुपए का हीरा प्राप्त हुआ था। पर वहां भी अब कम हो चला है।

बोर्नियो टापू के हीरे प्रायः श्याम रङ्ग के और अत्यन्त कठोर होते हैं। वहां के हीरों को दूसरे हीरे नहीं खुरच वा काट सकते। उन्हींके चूर इस काम में बरते जाते हैं।

अब हम पाठकों का ध्यान दक्षिणी अफ्रिका की ओर ले जाते हैं। सन् १८६७ में 'आरेञ्ज' (the Orange river) नामक नदी के किनारे कुछ लड़के थोड़े से सुन्दर सुन्दर कङ्कड़ बटोर कर खेल खेलते थे। इनमें हीरों के खड भी थे, पर वे लोग इनके गुणों से अनभिज्ञ थे। किसी पथिक ने इन कङ्कड़ों को सुन्दर देख कर उन लड़कों की मा से ले लिया और कई व्यक्तियों के हाथ होते हुए अन्त में हीरे होकर बिके। इसके थोड़े ही दिन उपरान्त लोग उक्त स्थान में हीरे की खोज में आने लगे और वाल नदी (the Vaal) के तट पर खोज कर हीरे निकालते रहे। यद्यपि वहां पहिले भूमि के ऊपर ही खोज की जाती थी तथापि बहुत कुछ लाभ होता था। एक हीरा वहां अखरोट के बराबर मिला था, जो अन्त में मेसर्स हण्ट रासिकल जौहरी के हाथ लगा। उसका मूल्य ३७५००० रु० जांचा गया। यहां के हीरों में प्रायः पीतता झलकती है। यहां के हीरे अति स्वच्छ न होने के कारण कम दामों के होते हैं तौ भी ठेकेदारों को बहुत लाभ होता है।

अब यहां बड़े बड़े कारखाने हो गए हैं और गहरी पृथ्वी खोद कर सुरङ्गों में से हीरे निकाले जाते हैं। यहां पर ४०० फीट गहरी पृथ्वी खोदने पर भी हीरे निकलते हैं। इन सुरङ्गों के खोदने और उनमें काम करने की विधि 'पत्थर के कोयलों' की खानों के सदृश है। पहिले लोगों को विश्वास था कि हीरा भूमि के ऊपर ही भाग में मिलता है। इस कारण पहिले केवल तीन चार किंबा दस फ़ीट गहिरी पृथ्वी खोदते थे। पर अब यह बात व्यक्त हो गई है कि अच्छे हीरे गहिरी पृथ्वी में भी पाए जाते हैं। इस गहिराई का कोई नियम नहीं है कि कितना गहिरा खोदने पर हीरे मिलते हैं।

यहां सबसे बड़ा कारखाना 'डी बीयर्स कोन्सोलिडेटेड माइन्स' (De Beers consolidated mines) है जो सन् १८८९ में स्थापित हुआ था। इस कारखाने में दिन रात काम होता रहता है और ८००० मनुष्य काम करते हैं, जिनमें से ६५०० काले आदमी वा हबशी हैं। यह लोग ८ घण्टे रोज काम करते हैं। काम करनेवालों की तीन टोलियां हैं जो आठ आठ घण्टा प्रतिदिवस काम करती हैं। प्रतिघण्टा ४०० बोझ मिट्टी निकाली जाती है। इससे पाठक समझ लें कि कितना काम होता है। रात्रि को बिजली के प्रकाश में काम होता है। प्रकाश का इतना तेज रहता है कि तनिक भी चतुराई कोई करे तो चट प्रगट हो जाती है। इस स्थान पर कोई भी बिना आज्ञा के हीरे का व्यवहार नहीं कर सकता। यदि कोई करे तो दो वर्ष कठिन कारागार भोगे। हीरे की कानून के अनुसार कानून के विरुद्ध बिना लाइसेन्स के काम करनेवाले को १५ वर्ष की सख़्त कैद, वा १५००० रु० जुरमाना, वा दोनों सजा दी जाती है और लाइसेन्सवालों को भी

अपना बही खाता ठीक रखना पड़ता है और प्रति मास उनकी नकल वहां की पुलिस में भेजी जाती है। और यदि किसीको हीरा मिले और वह उसकी रिपोर्ट न करदे तो भी उसको कड़ी सजा मिलती है। चाहे वह उसे लेवे नहीं, पर फिर भी उसकी इत्तला कर देना आवश्यक है।

कई कम्पनियां यहां काम करती हैं, पर सबसे बड़ी कम्पनी 'डी बीयर कन्सोलिडेटेड माइन्स' है। इस कम्पनी के हाथ हीरे का बजार है. अर्थात् भाव की घटती बढ़ती इसीके हाथ है। इस कम्पनी को कभी कभी ३००००००० केरात (१ केरात = ४ ग्रेन = २ रत्ती) प्राप्त होते हैं जो लगभग ५२५००००० रु० को बिकते हैं। सन् १८९२ तक इन खानों से १० टन अर्थात् २७० मन हीरा इस कम्पनी ने निकाला, जिनका दाम ९००००००० रु० आंका गया। सन् १८९५ में इस कम्पनी ने ४६५८९३७० रु० के हीरे बेचे। कुल लागत इस कम्पनी की २५५७२१९५ रु० लगी थी और शेष २१०१७१७५ रु० नगद मुनाफा हुआ। यह कम्पनी प्रतिवर्ष ४५०००००० रु० से अधिक का हीरा नहीं निकलवाती, कि कहीं बहुतायत के कारण उसके भाव में न्यूनता न हो जाय। अनुमान किया गया है कि समस्त भूमण्डल में प्रतिवर्ष साधारण रूप से लगभग ६००००००० रु० का हीरा बिकता है। यदि भाव घटा भी दिया जाय तो भी इससे अधिक बिक्री की सम्भावना नहीं हो सकती, इस कारण से यह कम्पनी अधिक हीरे नहीं निकलवाती। इस कम्पनी के हाथ दो बड़ी खानें हैं, अर्थात् 'किम्बरले' की और 'डी बीयरस' की। इन खानों में अन्य खानों की अपेक्षा व्यय कम पड़ता है और माल बहुत प्राप्त होता है।

हीरे के उक्त परिमाण में बोर्नियो, आस्ट्रेलिया, हिन्दुस्तान इत्यादि के हीरे शामिल नहीं हैं। इसकी अपेक्षा तो और स्थानों के हीरे का परिमाण अत्यन्त न्यून है। अनुमान किया गया है कि प्राचीन समय से आज तक हिन्दुस्तान से १०००००० केरात हीरे निकाले गए; ब्राज़ील से (सन् १७२८ से) १२००००० केरात और दक्षिणी अफ्रिका से केवल १९ वर्ष में ५७०००००० केरात हीरे निकाले जा चुके हैं। यह अनुमान (विशेष कर हिन्दुस्तान के विषय में) क्योंकर और किस आधार पर किया गया है नहीं मालूम होता।

यह हीरे के खड पहिले कुरूप और बेचमक होते हैं। इनको काट छांट कर बनाने से चमक निकलती है। जो लोग इसे काटते छांटते हैं, उन्हें साधारण बोलचाल में "हीरातराश" कहते हैं। इसके काटने की कई रीतें हैं, पर सबसे सुलभ यह है कि बाल बराबर महीन लोहे की तार में हीरे का चूरा महीन करके पानी और सिरके के साथ लगाकर हीरे को रेतते हैं। और इसके घाट और परब इत्यादि जो बनाते हैं, वह भी इसी चूरे से बनाते हैं जो एक चक्कर पर लगाते रहते हैं, और उस चक्कर से हीरे को खरादते हैं और जैसा उचित समझते हैं वैसे घाट बना लेते हैं। हिन्दुस्तान के प्रायः सभी बड़े बड़े नगरों में लोगों ने 'हकाक' देखे होंगे जो छोटे छोटे नग बनाया करते हैं। इस कारण से इसका विशेष विवरण विस्तारपूर्वक देना व्यर्थ समझा, क्योंकि इससे पाठकों को कोई लाभ नहीं है।

अब आप लोगों को हीरे का पूरा वृत्तान्त प्रगट हो गया। पर हम हिन्दुस्तानियों के लिये अति आवश्यक ज्ञातव्य विषय यह रह गया कि जब हीरे का खड बना बना कर आभूषण के लिये हीरे के थान तैयार हो जाते हैं तो इसके कितने रूप होते हैं और उनमें क्या क्या गुण और दोष हैं। इस हेतु इसका विवरण करना अति लाभदायक समझा गया। मोती के वर्णन में यह लिखा जा चुका है कि केवल पढ़ लेने से रत्नों का परीक्षा नहीं आ सकती। इसके लिये अभ्यास और शिक्षा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। तो भी साधारण रूप से बहुत सी बात प्रगट हो जाने से इसका विवरण लाभदायक अवश्य है। [शेष आगे।

हिन्दी-उर्दू।



उर्दू—अरी क्योंरी चुड़ैल ! तू मर कर भी नहीं मरती ?

हिन्दी—बेटी ! तू जुग जुग जी, मुझे क्यों मारे डालै है ? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है ?

उर्दू—तेरे आछते मुझे राजगद्दी जो नहीं मिलती।

हिन्दी—ठीक है बेटी ! कलजुग न है। तुझे इसी दिन के लिये बड़े साध से जन्माया था ! अच्छा तेरे जी में आवै सो कह; पर मेरी तो माता की आत्मा ठहरी; मैं तो आसीस ही दूंगी।

श्रीराधाकृष्ण दास।

गुलिस्तां आठवां बाब

का हिन्दी अनुवाद

उपदेश कुसुम

भाषा गद्य और पद्य में, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत। मूल्य दो आना। डाक महसूल आध आना।

मुअल्लिम नागरी

बाबू नन्दमल कृत

हिन्दी न जाननेवाले सब लोगों को अवश्य मंगवानी चाहिए। इसकी सहायता से अमले, वकील, हाकिम, दरख्वास्तनवीस, मुहर्रिर, आदि सब अदालती लोग बहुत शीघ्र हिन्दी का लिखना और पढ़ना सुगमता से सीख जांयगे। मूल्य ।।) डाक महसूल -)

नूतनचरित्र

बाबू रत्नचन्द, बी. ए., वकील, हाईकोर्ट, इलाहाबाद रचित, एक सुन्दर उपन्यास है। सब साहित्यसेवियों को नूतनचरित्र पाठ करना चाहिए। यह पुस्तक हिन्दी भाषा के श्रेष्ठ उपन्यासों में माना जाता है। मूल्य १) डा. म. -)॥

दुर्गा सप्तशती

कीलक कवचादि सब बातों से सम्पूर्ण। सुन्दर मोटे अक्षरों में बहुत शुद्ध छपी है। मूल्य ॥=) डाक महसूल -)

इन पुस्तकों के मिलने का पता—इण्डियन प्रेस, प्रयाग।

शिल्पविद्या।

इस पुस्तक में मोज़े, दस्ताने, कुरते, बनियान, पैजामें आदि बुनने की ऐसी सरलरीति लिखी है कि रोज़गारी मनुष्य जिनके द्वारा रोज़गार करके सहस्रों रुपये का लाभ कर सकता है। प्रत्येक देशहितैषी को इस पुस्तक की एक एक प्रति अपने पास रखनी चाहिये इस पुस्तक में बुनावट के लगभग ८० चित्र दिएगए हैं। मूल्य १।) डांक व्यय माफ।

बा० चन्द्रसेन बुकसेलर, मुरादाबाद।

असल अर्क कपूर

हैजे की अनमोलदवा। कहीं हैजा फैला होवे तो रोज दो चार बूंद अर्क कपूर पीवो तो फिर हैजा होने का डर न रहेगा। हैजा होने पर जल्द अर्क कपूर पिलाओ क्योंकि पहली हालत में इस दवा के सेवन से सौ में नब्बे आदमियों को आराम होता है। गर्मी के दस्त व अजीर्ण में भी यह महोपकारी है। मोल ।) शीशी। डाक म० १ से ४ शीशी तक ।=) आना।

कोला टौनिक

आफ्रिका देश के कोला नामक फल से यह बनता है। यह एक अपूर्व बलकारक दवा है। अधिक मिहनत, चिन्ता, शोक वा हवा पानी के हेरफेर आदिक कारणों से शरीर क्षीण हुआ होवे तो कोला पीओ। इससे नये बल का संचार होता है। घोड़े की सवारी पहाड़ की चढ़ाई कुस्ती वा कसरत वक्तृता वा कथा नाच वो गाना पढ़ना वा पढ़ाना चिन्ता वो विचार आदि कामों में पहिले कोला पीओ। दम जल्दी नहीं भरेगा। दिमाग नहीं थकेगा। शरीर पुष्ट होने के पहिले छोटी उम्र में विवाह आदिक से शरीर शीघ्र ही शिथिल हो गया हो तो कोला का सेवन करो बल बढ़ेगा। मदिरा के दोषों को मिटाने में कोला अमृत है। कुछ काल तक कोला के खाने से मदिरा से चित्त हटता है; मदिरा के दोष अजीर्ण, मन वो शरीर की क्षीणता आदिक नहीं रहती। वास्तव में शराब छोड़ाने की यह एक अनमोल दवा है। कोले के सहारे से अफीम भी छुट जाती है। कोला पीए वो अफीम की मात्रा घटाता जाय। कुछ समय में बिना किसी प्रकार क्लेश के अफीम छूट जायगी। कोला स्वर को साफ करता है, गले में जोर देता है जिससे आवाज ऊँची होती है। गानेवालों को हमेशा कोला पास रखना चाहिए। ३२ पूरी खुराक की एक शीशी १) रु०, डा० म० ।=) आ०। ☞ प्रशंसापत्र और पूरे हाल की छपी हुई पुस्तक मंगा देखिये। डाः एस, के, बर्मन—५, ताराचंद दत्त ष्ट्रीट, सिंदुरियापट्टी, कलकत्ता। यह दवा चौक इलाहाबाद में शिवनन्दनप्रसाद माताप्रसाद के पास भी मिलती है।

२०) पुरस्कार !!

जनवरी, १९०३, से सरस्वती मासिक पत्रिका का चौथा वर्ष आरम्भ होगा, और उसी संख्या से सरस्वती का चित्र, जो तीसरे वर्ष में इसके 'कवर' पर प्रकाशित हो रहा है, बदल कर दूसरा चित्र दिया जायगा ।

चित्रविद्या-रसिक महाशयों से निवेदन है कि २० दिसम्बर के भीतर हमारे पास सरस्वती का एक मनोहर चित्र बनाकर भेज़ दें । यदि किसी महाशय का चित्र सबसे उत्तम तथा सरस्वती के योग्य समझा जाय, तो वही चौथे वर्ष में प्रकाशित किया जायगा, तथा साथ ही चित्रकार का नाम और पता सब लोगों के जानने के लिये छाप दिए जायगें । केवल यही नहीं, उक्त चित्रकार महाशय को सरस्वती पत्रिका की ओर से २०, पारितोषिक दिया जायगा ।

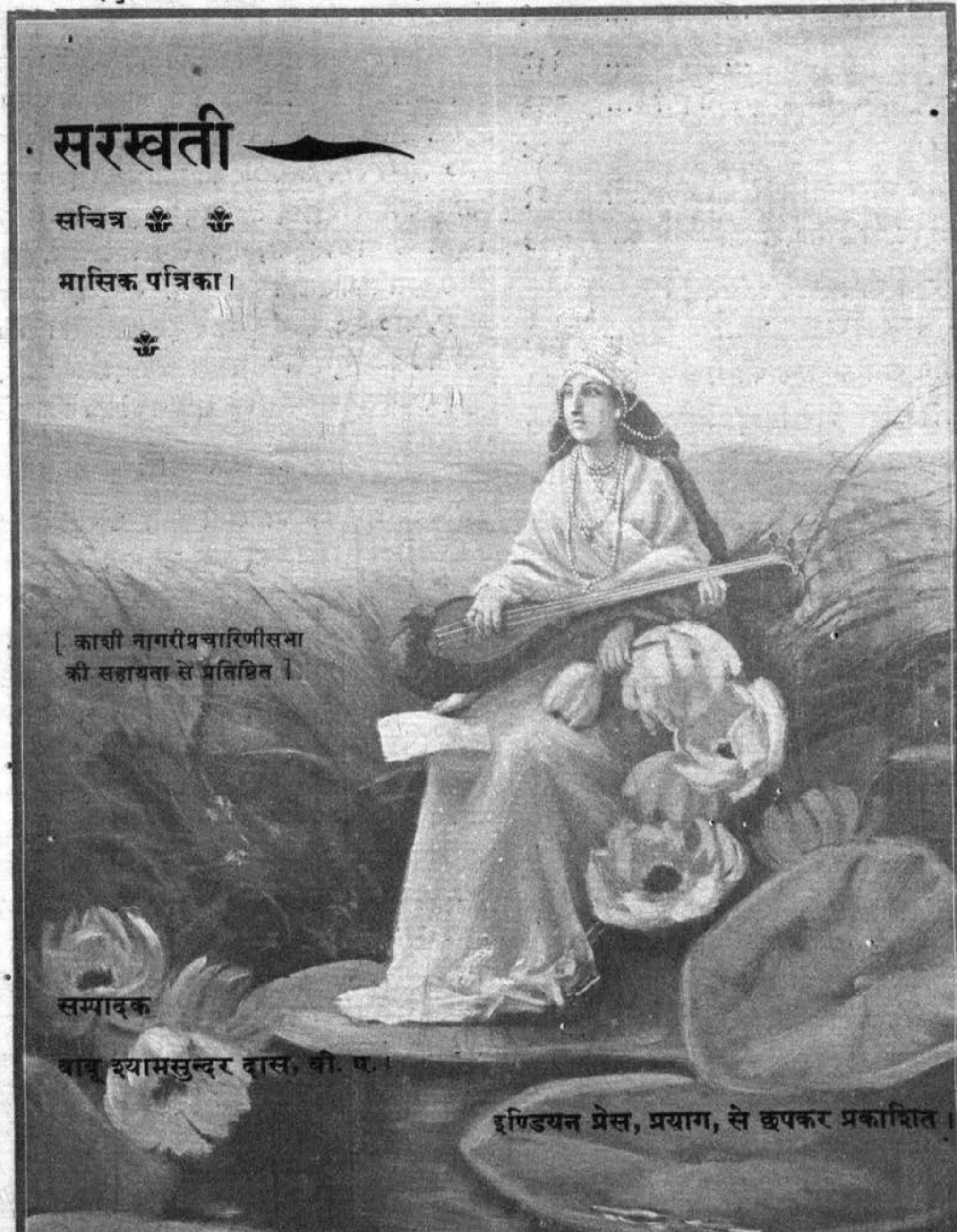
यदि सम्भव हो तो यह चित्र एक ही रंग में खींचा जाना चाहिए, अथवा किसी छोटी सुन्दरी बालिका को सरस्वती का वेष पहिराकर फोटो से उसका चित्र उतार लेना चाहिए । यदि फोटो हो तो फुलप्लेट का हो । फोटो के लिये केवल १०) पुरस्कार दिया जायगा ।

यदि और महाशयों का चित्र सर्वश्रेष्ठ नहीं हो, परन्तु उत्तम पाया जाय, तो वह भी सर्वसाधारण के दर्शनार्थ सरस्वती में छाप दिया जायगा ।

मेनेजर सरस्वती,

इण्डियन प्रेस,

प्रयाग ।



सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका।

[काशी नागरीप्रचारिणीसभा की सहायता से प्रतिष्ठित]

सम्पादक
बाबू श्यामसुन्दर दास, बी. ए.।

इण्डियन प्रेस, प्रयाग, से छपकर प्रकाशित।

सूची

चौथे वर्ष की सरस्वती !

इस संख्या के साथ सरस्वती के तीसरे भाग का अन्त हो गया। जनवरी सन १९०३ से एस पत्रिका का चौथा भाग आरम्भ होगा। आगे, इसके सम्पादक के पद को हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक झांसीनिवासी पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जो सुशोभित करेंगे। चौथे वर्ष में सरस्वती पिछले तीन वर्षों से अधिक उत्तमता से प्रकाशित हो, इसका बन्दोबस्त किया गया है। सरस्वती पत्रिका स्त्रियों तथा पुरुषों, दोनो के पढ़ने योग्य हो, इसका भी प्रबन्ध किया गया है। हिन्दीप्रेमियो, आपको सुनकर हर्ष होगा कि सरस्वती को पढ़नेवाली कई गुणवती सरस्वतीस्वरूपिणी स्त्रियां भी हमारी ग्राहकश्रेणी को शोभित कर रही हैं। सरस्वती पत्रिका हमारी पाठिकाओं को अधिक प्यारी होजाय, और इसके पढ़ने से स्त्रियों को अधिक लाभ पहुंचै, इसलिये अगले वर्ष से 'कामिनी-कौतुहल' नाम का एक लेख प्रतिसंख्या में प्रकाशित होगा। अपने सब ग्राहक ग्राहिकाओं से हमारी प्रार्थना है कि सरस्वती पर अपनी कृपा बना रक्खें, और, जहां तक सम्भव हो, अपने मित्रों में इसका प्रचार कर हमारा उत्साह और हिन्दी भाषा का गौरव बढ़ावें। पाठक तथा लेखक महाशयों की सहायता बिना सरस्वती अपना कर्त्तव्य पूरा पूरा नहीं निबाह सकती।

जिन जिन महाशयों का चन्दा पूरा हो चुका है, उनसे प्रार्थना है कि जनवरी में अपना अपना मूल्य तुरन्त भेज कर हमारी सहायता करें। अथवा वी० पी० द्वारा पत्रिका भेजने की हमें आज्ञा दें। फ़रवरी की संख्या में दिल्लीदर्बार का, सुन्दर सुन्दर फोटोचित्रों से सजा हुआ, एक लेख प्रकाशित होगा, और हमारे वर्त्तमान सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दास, बी० ए०, स्वयं दरबार देखकर उसे लिखेंगे। घर बैठे कलियुग के राजसूय यज्ञ दर्शन का ऐसा सुन्दर अवसर सरस्वती के सहायकों ही को मिलेगा.

एक और बात

हम अपने ग्राहकों को जता देना उचित समझते हैं। चौथे वर्ष से उनका नाम जनवरी से दिसम्बर ही के लिये अपनी बही में हम लिखेंगे। किसी दूसरे महीने से नहीं। बीच की संख्याओं से पत्रिका भेजने से वार्षिक फाइल टूट जाती है। और उससे हमें व्यर्थ हानि उठानी पड़ती है। पिछली संख्याओं के लिये बहुत लोग हमें बारबार लिखते हैं, परन्तु पूरी फाइल न रहने के कारण हम उन्हें पिछले भाग नहीं भेज सकते। पिछले भागों के लिये कोई कोई महाशय तीन रु० की जगह पांच पांच रु० तक देना चाहते हैं। परन्तु, हमारी फाइल टूट जाने के कारण, हम उनका मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकते। पिछले भागों का फिर छपना सहज नहीं, इसलिये, महाशयो, आइए, देर न कीजिए, तुरन्त ग्राहक हो जाइए, नहीं तो पीछे पछताना पड़ेगा। ३) की जगह ५) देने पर भी पिछली संख्याएं पूरी नहीं मिल सकेंगी।

निवेदक,

मेनेजर सरस्वती,

इण्डियन प्रेस,

प्रयाग।



महाराज माधवराव सेंधिया, ग्वालियरनरेश।

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

भाग ३] दिसम्बर १९०२ ई० [संख्या १२

विविध वार्ता

इस मास की संख्या के साथ सरस्वती का तीसरा वर्ष पूरा होता है। पहिले वर्ष से लेकर आज तक मेरा सम्बन्ध इस पत्रिका से घनिष्ट बना रहा। पहिले वर्ष में एक समिति इस पत्रिका का सम्पादन करती रही और मैं भी उस समिति का सभासद रहा। दूसरे और तीसरे वर्ष में इसके सम्पादन का भार पूरा पूरा मेरे ऊपर रहा। परन्तु अब चौथे वर्ष के प्रारम्भ से यह कार्य हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी के आधीन रहेगा। इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह हुआ कि मैं समय के अभाव से सरस्वती के सम्पादन में इतना दत्तचित्त न रह सका जितना कि मुझे होना उचित था। इसलिये केवल नाम के लिये सम्पादक बना रहना मैंने उचित नहीं समझा। परन्तु मैं अपने पाठकों और पत्रिका के लेखकों को विश्वास दिलाता हूं कि यद्यपि आगामी संख्या से मैं इसका सम्पादक न रहूंगा, पर इस पत्रिका के साथ मेरी वैसी ही सहानुभूति बनी रहेगी जैसी अब तक रही, और मैं सदा इसकी उन्नति से प्रसन्न होऊंगा। अन्त में मुझे अपने उन मित्रों से प्रार्थना करनी है जो लेखों द्वारा तीन वर्ष लों मेरी सहायता करते रहे। आशा है कि वे अगले वर्ष में भी इसी प्रकार सहायता करते रहेंगे। अब भविष्यत में सरस्वती में प्रकाशार्थ सब लेख, परिवर्त्तन के सम्वादपत्र, तथा समालोचनार्थ पुस्तकादि निम्नलिखित पते से भेजे जाने चाहिए—

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी,
सम्पादक "सरस्वती",
झांसी।

पत्रिका का प्रबन्ध तथा मूल्य सम्बन्धी पत्रव्यवहार पूर्ववत् प्रयाग के इण्डियन प्रेस ही से रहेगा।

***

ईश्वर की सृष्टि में नित नई नई बातों का पता लग रहा है। अभी थोड़े दिन हुए एक ऐसी धातु का पता लगा है जिसके गुण बड़े अद्भुत हैं ग्रैार जिसका नाम रेडियम रक्खा गया है। यह देखने में खड़िया की सी मालूम पड़ती है ग्रैार छूने पर ठंढी जान पड़ती है, पर उससे सदा प्रकाश निकलता है ग्रैार किसी दूसरे पदार्थ के उसके पास रख देने से वह सहज ही में गरम हो जाता है। यदि इस पदार्थ का एक छोटा सा टुकड़ा, जो दो तीन माशे हो, एक शीशी में बंद कर दिया जाय तो उससे इतना प्रकाश निकलेगा कि अंधेरे में उससे सुगमता से पुस्तक पढ़ी जा सकेगी। यदि नीबू के बराबर का टुकड़ा रक्खा जाय तो उससे इतना प्रकाश निकलेगा जितना एक अच्छे टेबुल लम्प से निकलता है ग्रैार यदि यह पदार्थ छत्त में छू दिया जाय तो उस गृह में सूर्य सा प्रकाश सदा वर्तमान रहेगा। सबसे अच्छा गुण इस धातु में यह है कि उसका क्षय बहुत ही कम होता है, अर्थात् १००० वर्ष में चैाथाई माशे का कहीं सैावां हिस्सा खर्च होता है। इसलिये यदि ४ माशे का टुकड़ा रक्खा जाय तो वह सोलह लाख वर्ष तक चलेगा। पर इस पदार्थ का मूल्य बहुत है, अर्थात् एक माशे का दाम ३७६८०) रु० है। इसका मुख्य कारण यही है कि इसके निकालने में बहुत व्यय पड़ता है। इस धातु के पता लगने से वैज्ञानिकों में बड़ी हल चल मची हुई है। सूर्य में अब तक अग्नि मानी जाती थी ग्रैार यह आशंका थी कि उस अग्नि के बराबर जलते रहने से एक दिन ऐसा आवेगा जब सूर्य की आग ठंढी हो जायगी, ग्रैार तब गरमी के न मिलने से सैारमंडल की सृष्टि नष्ट हो जायगी। पर रेडियम के निकलने से वैज्ञानिकों का यह विचार हो रहा है कि हो न हो सूर्य में यही धातु वर्तमान है जिससे प्रकाश ग्रैार गरमी दोनों का काम चलता है ग्रैार जिसका भंडार इतना बड़ा है कि जो शायद कभी ही चुके। ईश्वर की सृष्टि में अभी न जाने क्या क्या चीजें छिपी पड़ी हैं!

अन्यत्र हम इस प्रदेश के सेन्सस सुपरिनटेनडेण्ट की रिपोर्ट के कुछ ग्रंश का अनुवाद, जो हिन्दी भाषा ग्रैार नागरी अक्षरों के विषय में है, देते हैं। हिन्दी के प्रेमियों से प्रार्थना है कि इसे वे ध्यान पूर्वक पढ़ें ग्रैार मिस्टर बर्न के सिद्धान्तों पर विचार करें।

* * *

इस संख्या के साथ हम बर्दवान के महाराजाधिराज विजयचन्द महताब बहादुर ग्रैार उनके पिता राजा बनबिहारी कपूर का चित्र देते हैं। भारतवर्ष के खत्रियों में अब प्रसिद्ध राज्यवंश केवल बर्दवान का रह गया है* ग्रैार अनेक पुराने राज्यों का तो अब कहीं भी पता नहीं लगता। इस वंश के आदि पुरुष आबूराय हुए, जो जाति के कपूर खत्री तथा लाहोर के रहनेवाले थे, ग्रैार सन् १६५७ में बङ्गाल में आकर रेकाबी बाजार (बर्दवान) के चैाधरी ग्रैार कोतवाल नियत हुए। इनके लड़के बाबू राय परगना बर्दवान ग्रैार दूसरे तीन स्थानों के मालिक हुए। इनके पीछे घनश्यामराय ग्रैार घनश्यामराय के पीछे कृष्णरामराय हुए, जिनको ग्रैारंगजेब ने एक फरमान सन् १६९४ में भेजा ग्रैार बर्दवान आदि स्थानों का चैाधरी ग्रैार जमींदार माना। इनके पीछे जगतराम राय गद्दी पर बैठे ग्रैार इन्हें भी ग्रैारंगजेब ने एक फरमान सन् १६९१ में भेजा। इस समय इनके आधीन पचास महाल थे। इनके पीछे कीर्तिचन्द्र राय ग्रैार चित्रसेनराय गद्दी पर बैठे। चित्रसेनराय को सन् १७४० में राजा की पदवी मिली। सन् १७४४ में राजा तिलकचन्द बर्दवान की गद्दी पर बैठे। इन्हें दिल्ली से राजाबहादुर ग्रैार चारहजारी की पदवी मिली ग्रैार अन्त में ये महाराजाधिराज ग्रैार पंचहजारी की पदवी से प्रतिष्ठित हुए। सन् १७७१ में महाराज तेजचन्द ६ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बिराजे ग्रैार १८३२ तक राज करते रहे। इनके पीछे महाराजा महताबचन्द गद्दी पर बैठे

* ऐसा सुनने में आता है कि दीनाजपुर के राजा भी खत्री हैं।

और १८६४ में वाइसराय की कौंसिल के सभ्य नियत हुए। बङ्गाल के ये पहिले रईस थे जो इस कौंसिल के सभ्य हुए। सन् १८७७ में इन्हें १२ तोपों की सलामी दी गई। सन् १८७९ में महाराजा आफ़ताबचन्द महताब गद्दी पर बैठे, पर निस्सन्तान होने के कारण इनकी मृत्यु के पीछे राजा बनबिहारी के पुत्र, जो इनके बड़े निकटस्थ सम्बन्धी हैं, गोद लिए गए। नाबालिग रहने के कारण इतने दिनों तक इन महाराज विजयचन्द महताब बहादुर के राज्य का सब काम राजा बनबिहारी कपूर करते थे। गत २० अक्तूबर को महाराज बालिग हुए और उसी दिन से वे अपने राज काज में लग गए हैं। महाराज ने अंग्रेज़ी में अच्छी शिक्षा पाई है और बँगला पद्य में तो अपनी रची हुई दो पुस्तकें भी छपवाई हैं जिनकी प्रशंसा बङ्गाल के पत्रों ने बहुत कुछ की थी। महाराज अपने धर्म्म पर सन्नद्ध और बड़ी अच्छी प्रकृति के हैं। हमको विश्वास है कि इनके समय में राज्य की अच्छी उन्नति होगी और प्रजा सुखी होकर इनके सुशिक्षित और विज्ञ होने का लाभ उठावेगी।

राजा बनबिहारी कपूर के विषय में इतना लिख देना ही काफी होगा कि जिस पुत्र ने उनकी शिक्षा और उपदेशों से लाभ उठा कर अपनेको ऐसा योग्य बनाया है, उसके पिता की जहां तक प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इनके प्रजाहितकर कार्यों और राज्य के प्रवन्ध से सन्तुष्ट होकर गवर्नमेण्ट ने इन्हें राजा की पदवी दी है और अबतक वह इनका बहुत कुछ सम्मान करती है। राजा साहब का ध्यान अपनी जाति की उन्नति की ओर बहुत कुछ रहा है। हमें विश्वास है कि राज्यकार्य के झंझटों से छुट्टी पा कर ये अपना शेष जीवन देश के हित में लगावेंगे।

मथुरा

अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः पुरीं मदीयां परमां सनातनीम्।
सुरेन्द्र-नागेन्द्र-मुनीन्द्र-संस्तुतां मनोरमां तां मथुरां पुरातनीम्॥४३
(वृन्दावनमाहात्म्ये पञ्चमोध्यायः।)

(मिश्रित छंद)

हे मथुरे! तव यश को गाये गये बहुत दिन बीत।
इससे बुधजन तेरे गुण की करते नहीं प्रतीत॥
नहीं विश्वास वे भारत में अब हैं,
नया यह विश्व है नर नये सब हैं;
सभी संसार में लपटे पड़े हैं,
न जाने द्रव्य क्या इसमें गड़े हैं॥ १॥

यद्यपि मैंने शोभा तेरी अब तक देखी है न,
तदपि हृदय में यही लालसा लगी रहे दिन रैन।
कभी सुखमावलोकन में करूँगा
हृदय में मूर्ति वह सुन्दर धरूँगा
नहीं है प्राप्त जो नरपाल को भी,
यथा कलधौत को रखता है लोभी? ॥२॥

कब मैं तेरा दर्शन करके वह पाऊँ आनन्द।
जिसके लिये गमन करते थे यदु-कुल-कैरव-चन्द॥
नहीं पर हाय! वह वृन्दाविपिन है।
नहीं वे धेनु दुधा, नहीं तृन हैं,
नहीं वह श्यामसुन्दर की छटा है,
नहीं वह इन्द्र की काली घटा है॥३॥

नहीं गाय के पीछे पीछे दौड़ें हैं घनश्याम।
हल औ मूशल लिए हुए नहिं आते हैं बलराम॥
नहीं वृजभूमि में हैं नन्द राजा,
नहीं वह कंश का भय है विराजा,
नहीं रक्षा करैं हैं अब कन्हाई,
नहीं वह गोपियों की है दुहाई॥ ४॥

गोवर्धन गिरि की महिमा को पुनः कौन दिखलावेगा,
इन्द्रमान भञ्जन करने को नख पर कौन उठावेगा?
धरा पर आज गिरिधारी नहीं हैं;
कहीं थे उस समय औ अब कहीं हैं॥

यहां पर कोप करके मेघ आते।
अनेकों ग्राम छिति से हैं बहाते ॥ ५ ॥

पर वेही गिरिराज अचल हो अब भी पूजे जाते हैं।
यद्यपि अन्न नहीं खाते हैं तदपि प्रभाव दिखाते हैं॥
अनेकों वार चोटैं खा चुके हैं।
नहीं पर वृष्टि से अब तक झुके हैं॥
अकेले भी नहीं वे हारते हैं।
अभी तक मेघ को ललकारते हैं ॥ ६॥

नहिं वह बंसी की मधुरी ध्वनि नहिं वे गोपी गीत
अब ते अपने कार्य लगे सब मोद रहित भयभीत
नहीं उनमें से अब कोई बचा है।
नहीं वह सृष्टि (?) ब्रह्मा ने रचा है॥
अमित अब शोक के पुतले बने हैं।
बहुत से दीन हैं दुखिया घने हैं ॥७॥

सीधे सादे गोप वहां के अब किञ्चित निकलेंगे।
वह विनोद की मूर्ति कहां! अब क्यों वे दर्शन देंगे?
कहां अब वे पुरानी झोपड़ी हैं?
लतावेष्टित कहां वन में खड़ी हैं।
अतिथि का अब कहां सत्कार है वह।
यथा मन्वादि शास्त्रों में गये कह? ॥ ८ ॥

पर पावन वृजभूमि वही है भक्ति न वही परन्तु।
वैसे ही द्रुम, लता वैसिही, वैसही खग जन्तु॥
सुना है किन्तु वैसे वन नहीं हैं,
मनुष्यों में वहां वे धन नहीं है,
सरलता छोड़ के तुझको भगी है।
दिवाली सभ्यता की जगमगी है॥ ६ ॥

क्रमशः तेरे आस पास के वन सब कटते जाते हैं।
तब भी परम्परा प्रकृति की वृन्दावन में पाते हैं॥
यहां पर फूल अब भी फूलते हैं।
जिन्हें सब देख सुधि बुधि भूलते हैं।
फलों की बात क्या कहनी वहां है।
स्वयं साक्षात वनदेवी जहां है ॥ १० ॥

हरि हरि! सकल विहंग डार पर मीठी वाणी बोलैं हैं
फुदक फुदक कर गिरते पड़ते बैठे करैं कलोलैं हैं॥
कहीं पर लाल हैं मैना कहीं हैं।
फुलाये काक भी डैना कहीं हैं।
कबूतर तीतरैं बैठी कहीं हैं।
अहंता से पिकैं ऐंठी कहीं हैं ॥ ११ ॥

शुक भी बैठे पण्डित जी से गोपी कृष्ण उचारैं हैं।
अभी द्विजों को मुदित देखकर अपना अंग निहारैं हैं।
कहैं हैं "इन द्विजों की क्या दशा है।
हुआ क्या आज इनको कुछ नशा है?
कि जिसके बीच ये प्रभु नाम भूले।
समाते हैं नहीं निज अंग फूले" ॥१२ ॥

यह सुनकर पक्षी कहते हैं 'होवें रुष्ट न आप।
स्मरण सदा हम हरि को करते वही मन्त्र औ जाप॥
नहीं पर आप सदृश कर सकै हैं।
इसी से और का औरै बकै हैं।
सुनैं हैं किन्तु जब वह आप से नाम।
अलौकिक मोद पाते आतमाराम ॥१३॥

इसी प्रकार प्रजा तेरी सब आनन्द करती दीखैं।
एक दूसरे से हरि का गुण अद्भुत विधि से सीखैं॥
मृगों के झुण्ड के हैं झुण्ड जाते।
सुनैं हैं जब कहीं गाते बजाते।
उठा कर कान स्थिर होते वहीं हैं।
"कहीं बंसी की वे ध्वनि तो नहीं है ॥१४॥

जिसकी दन्त-कथा कहते हैं अपने कुल के वृद्ध।
किसी समय में जिसको सुनकर हुए पितामह सिद्ध"
इसी अनुमान में कोई खड़ी है।
लगाता व्याध बाणों की झड़ी है।
तजै है प्राण पर पाती है वह मुक्ति।
अहाहा! धन्य है तव भूमि की भुक्ति ॥१५॥

तव पुनीत सीमा के भीतर श्री यमुना जी बहती हैं
सूरसुता जिनको बहुस्मृतियाँ पतितपावनी कहती हैं
बिलोको! श्वेत बक भी तैरते हैं।
सरोरुह स्वच्छ पाकर ठैरते हैं,
कहीं पर कञ्ज अब तक भी खिले हैं,
कहीं कलियों से जाकर वे मिले हैं ॥१६॥



मथुरा ।

अंडे के सम जान कहीं वे लखो ! बैठ कर सेते हैं,
खिलते ही उनके अपना मग चकित चित हो लेते हैं।
अहाहा ! तीर पर तरु जो लगे हैं।
मनो वे रात्रि में सो कर जगे हैं,
लखैं हैं जल-मुकुर में रूप अपना,
नया संसार है वा दृश्य सपना ॥१७॥

गृह उलटे उलटे सब मानव उलटी सारी बात,
यमुना-मैया जनु दिखलावै कलि-के सब उत्पात ॥
कहीं पर मात की धारा प्रबल है,
लिये कुछ श्यामता क्या स्वच्छ जल है,
नहाया श्याम ने इनमें बहुत है,
इसीसे अंग इनका चिन्हयुत है ॥१८॥

भिन्न भिन्न गति मति के मानव जाकर वहां नहाते हैं।
अपने अपने सुभगकर्म से मनवांछित फल पाते हैं।
वहां पर पाप बह जाता है सारा,
नहीं उसको कहीं मिलता सहारा,
कभी उसको यमालय का न भय है,
कहा जिसने कभी 'यमुना की जय' है ॥१९॥

तैसेही तुलसी की महिमा बहु पुराण मिल गाते हैं,
हरित पत्र वे धन्य जगत में जिनको बुधजन खाते हैं।
पतिव्रत धर्म की मर्याद हैं यह,
स्वयं भगवान ने मुख से दिया कह,
इसीसे आज सबकी स्वामिनी है,
प्रिया हैं कृष्ण हरि की कामिनी हैं ॥२०॥

तुलसी संग अन्य सुन्दर तरु थाले बीच लगे हैं,
अति रमणीय वाटिका शोभित अलिगण प्रेम पगे हैं
कहीं बेला कहीं फूली चमेली।
कहीं कोने में केली है अकेली,
कहीं बन्धूक है गुञ्जा कहीं है,
सजीवनमूरि भा पुञ्जा कहीं है ॥२१॥

ललित लवङ्गलता माधविका राजवल्लिका राजै हैं,
कृष्णा कृष्णफला करुणायुत वागों बीच विराजै हैं,
कई नीचे धरा पर जा पड़ी हैं,
कई तरु के सहारे से खड़ी हैं,
'कहां हैं हाय ! अब वह कृष्ण प्यारे ?
कहां हैं नाम के दाता हमारे" ॥२२॥

उसी प्रकार अशोक शोकयुत अब पड़ता दिखलाई है
तप में मग्न महामुनिवर ने मनो समाधि लगाई है;
बहुत फल फूल से पूजा करैं हैं,
अमित तरु ध्यान ही केवल धरैं हैं।
किसी के प्रेम से आँसू बहैं हैं,
मधुव्रत पोंछते जिनको रहैं हैं ॥२३॥

अवनि अनूप वहाँ की वैसीह शुचि सुगन्धमय होगी,
जहां निवास किये पाते हैं शांति अलौकिक योगी,
जहां पीली हरी दूर्वा जमी है,
गलीचों की नहीं उनको कमी है,
मनोहर कुञ्ज के तम्बू तने हैं,
मनोरम वृक्ष के खम्भे बने हैं ॥२४॥

पुष्पों के परयङ्क जिन्हें प्राकृतिक नियम बनवाते हैं,
पत्रीगण जिनको कलरव से प्रातःकाल उठाते हैं,
लगा है कृष्णही में चित्त जिनका,
समझते रत्न को भी तुल्य तिनका,
नहीं है स्वर्ग में भी स्नेह मन से,
अहा ! तू धन्य है निज भक्त जन से ॥२५॥

तू अनादि है सुता प्रकृति की नहीं इसमें भ्रमकोई है,
सदा मातु की स्वच्छ गोद में तू सुखपूर्वक सोई है,
तुझी से प्रेम उसने यह किया है,
कि तुझको रूप अपना दे दिया है,
स्वभौतिक स्वच्छता आगे धरी है,
सुघरता कूट कर तुझ में भरी है ॥२६॥

जैसे माता निज इच्छा से प्यारी सुता संवारै है,
अपने आभूषण उतारकर अंग अंग पर वारै है,
मुदित होती है जैसी भव्यता देख,
असम्भव है यहां पर उसका उल्लेख,
उसी विधि देख कर तुझको छुई है,
प्रकृति भी फूल कर तुम्बी हुई है ॥२७॥

अति प्रसन्न हो तुझको लेकर कृष्ण शरणमें प्राप्त किया।'
प्रकृतिदेवि ने इस बिधान से निजकर्तव्य समाप्त किया।

वहां तू ने भी महिमा को दिखाया,
कि अपने तन को नन्दन से बढ़ाया,
प्रफुल्लित हो गये सब गात तेरे,
हुये आनन्द के नँद नन्द चेरे ॥ २८ ॥

ऐसा भाग न कोई तेरा जो कुसुमित नहिं होवै है।
साधारण दर्शक से यद्यपि तू अपनी छवि गोवै है
दिखाया तू ने अपनी पूर्ण छवि को,
समझ कर योग्यता यदुवंश रवि को,
कभी अपने प्रणत को भी दिखाया,
जिसे उस भक्तिरस में पूर्ण पाया ॥२९॥

वह वैभव जो प्रथम वहां पर रहा नहीं कह सकते हैं
जिसके वर्णन में मुनीश, वागीश, ईश भी छकते हैं
वही तू आज लों सुन्दर पुरी है,
नहीं काइयादि से अब भी बुरी है,
तदपि वह पूर्ण शोभा छिप गई है,
रहा कुछ और अब औरै भई है ॥३०॥

अब जिससे तव गुण गण प्यारे लगैं आधुनिक मन में
वही प्राकृतिक शोभा तेरी वर्णित है नव तन में।
यही आशा है बुधजन ध्यान देंगे,
वचन की सत्यता पहचान लेंगे,
कहा जो कुछ है वह सब है हृदय से,
प्रकट है कोष वह आनन्दमय से ॥३१॥

इस संसार दुःख सागर में मग्न रहूं दिन रैन।
इसी लिये लौकिक आँखों से तुझको देखा है न;
तुही है विश्व में आनन्ददात्,
अकेली बच रही है पुण्यमात्,
अगर तुझ को भी अबही देख लूंगा,
तो फिर किस आश से जीता रहूंगा ?॥३२॥

वागीश्वर मिश्र।

आस्ट्रेलिया में पाताली नदियां

सृष्टिकर्ता ने अपनी सृष्टि में भी वस्तुओं और जीवों को एकही सा सुखी नहीं बनाया है। किसीको कोई वस्तु दी है, तो दूसरे को उसी वस्तु से वञ्चित भी रक्खा है; परन्तु उसने जो वस्तुएं हमको दी हैं उनका पूरा लाभ हमलोगों को उस समय तक नहीं जान पड़ता जब तक कि हमको उनके अभाव का अनुभव न करना पड़े। उदाहरण के लिये एक छोटी सी बात लीजिए। क्या हम नदियों के निकट रहने वाले लोग कभी स्वप्न में भी जल के यथार्थ मूल्य को विचार कर उस कारुणिक परमेश्वर को कृतज्ञता से धन्यवाद देते हैं जिसने हमें ऐसे स्थान में उत्पन्न किया है जहां जल बहुतायत से प्राप्त हो सकता है? हां, उस समय हमें कुछ अंश में इसका मूल्य अवश्य ज्ञात होता है जब हमें यात्रा में अथवा और किसी कारण से एकआध दिन तक जल न प्राप्त हो सके। परन्तु तनिक सोचने की बात है कि जब एकआध ही दिन जल न मिलने से हमारी यह दशा हो जाती है, तो उन बिचारों की क्या दशा होती होगी जिन्हें सृष्टिकर्ता ने पृथ्वी के ऐसे भाग में उत्पन्न किया है जहां महीनों जल के अभाव से कष्ट सहन करना पड़ता है! आज हम आपलोगों को भूमण्डल के ऐसे ही एक भाग का वृत्तान्त सुनाते हैं। हमारे पाठकों में कोई बिरला ही ऐसा होगा जिसने आस्ट्रेलिया द्वीप का नाम न सुना हो। यह द्वीप भारतवर्ष के उत्तर-पूर्व में है। यह २४०० मील लम्बा और १४०० मील चौड़ा है। परन्तु इतने बड़े द्वीप में केवल एक ही बड़ी नदी 'मरे' है। कुछ दिन पहिले यहां जल का प्रायः सब काम केवल जलाशयों ही द्वारा चलता था। परन्तु सूखी ऋतु में ये जलाशय बहुत सूख जाते थे और बहुत से पशु तथा मनुष्य भी इसके अभाव से मृत्यु को प्राप्त होते थे। यहां भेड़ी बहुत होती हैं। एक एक भेड़ी रखनेवाले, जो बड़े धनाढ्य होते हैं, कई हजार भेड़ी रखते हैं। सूखे में, जब कि जलाशयों में बहुत थोड़ा पानी रह जाता था, और वह भी शीघ्रता से घटने लगता था, तो ये भेंड़ें जलाशय के चारो ओर बटुर जाती थीं और थोड़े ही काल में उसके आस पास की भूमि को

मरुस्थल बना देती थीं, और अन्त में भूख और प्यास के मारे इतनी दुर्बल हो जाती थीं कि चल नहीं सकती थीं, और इस प्रकार से भयानक मृत्यु को प्राप्त होती थीं। इसके अतिरिक्त ऐसा भी होता था कि किसी किसी सूखे हुए जलाशय के चारों ओर की भूमि दलदल होती थी, और कितनी ही प्यासी भेड़ें जो अपनी प्यास बुझाने के लिये इसकी ओर दौड़ती थीं, इन्हीं दलदलों में भयंकर रीति से फंस जाती थीं, और उसीमें उनके सिसक सिसक कर प्राण निकल जाते थे! यह दशा तो पशुओं की थी। पर मनुष्यलोग भी इससे पूर्णतया मुक्त नहीं थे और बहुतों को जल के लिये बड़े कष्ट सहने पड़ते थे।

सन् १८८५ ईसवी में आस्ट्रेलिया में जो सूखा पड़ा था, उससे केवल लाखों पशु और भेड़ें ही नहीं मरीं, वरन् भय था कि जल के अभाव से बहुतेरे नगर के नगर का विनाश हो जायगा। परन्तु इसी समय एक ऐसा आविष्कार हुआ जिससे असंख्य जीवों के प्राण बच गए और बड़े बड़े मरुस्थल, यदि स्वर्गतुल्य नहीं, तो भी बसने योग्य अच्छे स्थान हो गए। यह आविष्कार 'पाताली कुआं' है। पहिले पृथ्वी में यन्त्रों द्वारा एक बहुत गहिरा गोल छेद, जो प्रायः लग भग छ इञ्च चौड़ा होता है, करते हैं। ज्यों ज्यों यह छेद करते जाते हैं त्यों त्यों उसमें फौलाद की नलियां, जो एक दूसरे में पेंच पर कसी जाती हैं, लगाते चले जाते हैं। प्रायः लगभग आध मील से कम वा अधिक छेदे जाने पर इसमें से एक अच्छी जलधारा निकलती है, जो बहुधा बड़े ऊंचे तक बड़े भारी फुआरे की भांति जाती है। वोइसे नगर के एक पाताली कुएं की जलधारा ८५ फ़ीट ऊंची जाती है।

इस समय सबसे गहिरा पाताली कुआं प्रूस देश के श्लाडेबाच स्थान में है, जो लगभग एक मील गहिरा है। परन्तु आस्ट्रेलिया में पश्चिम क्वीन्सलेण्ड के विमेरा स्थान में एक पाताली कुआं ४००० फ़ीट गहिरा खोदा गया है, पर अब तक भी इसमें पानी नहीं निकला। परन्तु यह बात निश्चय हुई है कि इसे १००० फ़ीट और गहिरा खोद कर पानी निकाला जाय। यदि ऐसा किया गया तो वास्तव में यह एक बहुत ही गहिरा पाताली कुआं होगा।

पाताली कुएं में से पानी निकलने पर, इस पानी को पूर्णतया काम में लाने के लिये यह आवश्यक होता है कि इसे एक विशेष मार्ग द्वारा बहाया जाय; अथवा यों कहिए कि उसकी एक कृत्रिम नदी बनाई जाय। अतएव एक विशेष प्रकार के बड़े भारी हल द्वारा, जिसके खींचने के लिये बीसों बैल लगते हैं, कई मील तक एक बड़ी नाली बनाई जाती है, और फिर पानी स्वभावतः इसी नाली से बहता है। इन कृत्रिम नदियों को 'पाताली नदियां' कहते हैं। आस्ट्रेलिया देश-निवासी सृष्टि के अभाव को इन्हीं नदियों से पूरा करते हैं। आस्ट्रेलिया में स्थान स्थान पर ये पाताली नदियां बनी हैं। इनकी संख्या का अनुमान केवल इसी बात से कर लीजिये कि केवल एक पश्चिमी क्वीन्सलेण्ड में उनकी संख्या साढ़े चार सै से भी अधिक है।

परन्तु पाठकगण यह न समझें कि ये पाताली कुएं और नदियां सहज ही में बन जाती हैं। इनके बनाने में बड़ा व्यय लगता है। पाताली कुओं के बनाने में १००० फ़ीट की गहराई तक लग भग १८) रु० फुट के हिसाब से व्यय पड़ता है। इसके उपरान्त फिर, १५०० फ़ीट तक २४) रु० फुट के हिसाब से, और फिर इसके आगे २००० फ़ीट तक ३०) रु० फुट, और योंहीं आगे और भी समझ लीजिए। फिर इतना व्यय करने पर भी यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि सब कुओं में पानी निकले ही। बहुतेरे कुओं में बहुत दूर तक खोदे जाने पर भी जल नहीं निकला। इसके सिवाय ऐसा भी होता है कि किसी कुएं में जल निकलता तो है, परन्तु वह पृथ्वीतल के ऊपर तक नहीं चला आता और ऐसी अवस्था में उसे पम्प द्वारा ऊपर

लाना पड़ता है। फिर, किसी किसी पाताली कुएं का पानी जहरीला भी निकल जाता है; परन्तु ऐसा कभी बिरले ही होता है। हां, यह तो है कि बहुतेरे कुओं के पानी में औषधीय गुण होते हैं, और इसी कारण से, जब तक कि लोगों को ऐसा पानी सह न जाय, तब तक, उन्हें इसे औषधी ही की नाईं तनिक तनिक पीना पड़ता है।

अन्त में मुझे इतना ही और कहना है कि पाताली कुओं से व्यापार की भी बड़ी उन्नति हुई है। पाठक! आश्चर्य मत कीजिए कि कुओं से व्यापार की कैसे उन्नति हो सकती है। नहीं, जैसा मैं कहता हूं वैसा ही हुआ है। इन कुओं के खोदने में कई ऐसे स्थानों पर कोयलों तथा अन्य धातुओं की भी खानों का पता लगा है, जहां स्वप्न में भी उनके होने की सम्भावना नहीं थी। इसके अतिरिक्त ऊपर भेड़ों के विषय में जो कुछ लिखा जा चुका है, उससे आप लोगों को यह तो विदित होही गया होगा कि आस्ट्रेलिया में ऊन का बड़ा व्यापार है। ऊन के गट्ठड़ों को बैलों अथवा खच्चरों पर लाद कर सैंकड़ों मील तक निर्जन मरुस्थल में से भेजना पड़ता है। अतएव इसका किराया बहुत लगता है। जब वहां पाताली कुएं न थे, और जल बड़ा मूल्यवान समझा जाता था, तो गर्दीले और चिकट ऊन के गट्ठड़ बिना धोए ही भेजे जाते थे। पर अब उन्हें भली प्रकार धोकर स्वच्छ और हलका कर लेते हैं और इसी कारण उनका किराया भी कम लगता है। इस प्रकार से पाताली कुओं ने असंख्य जीवों की प्राणरक्षा करने के साथ ही साथ व्यापार को भी बड़ी उन्नति दी है।

भारतवर्ष में आज कल सूखा प्रायः प्रतिवर्ष पड़ने लगा है और साथही अन्न की मंहगी हो जाती है, जिससे लाखो जीवों के प्राण नष्ट हो जाते हैं। यदि गवर्मेण्ट अपने व्यय से इन कृत्रिम कुओं का यहां प्रचार करे तो आशा है कि बहुत कुछ आपत्ति दूर हो जाय और प्रजा को पानी के कष्ट से हानि न उठानी पड़े। गोपालदास।

हीरा

[२]

नग की बनावट

साधारणतः इसकी बनावट तीन प्रकार की होती है–

(१) कंवल (२) तिल कड़ी (३) पर्व

दलदार हीरों को उसके पहल काट कर कई सुन्दर रूप का बनाते हैं जिसे 'घाट' कहते हैं। यह घाट ११ प्रकार के होते हैं–

(१) कुतबी	(५) चौरस	(९) त्रिकोण
(२) अठमासा	(६) अठमासा तूलानो	(१०) बादामी
(३) छमासा	(७) गिर्दी	(११) सरो
(४) पियाला	(८) सिंघाड़ा	

ज्ञात रहे कि हीरे कई रङ्ग के होते हैं। बहुत करके श्वेत स्वच्छ ही होते हैं, परन्तु कोई कोई लाल, हरा, पीला, काला या श्याम भी होता है।

हिन्दुस्तानी रत्नपरीक्षक (जौहरी) लोग शास्त्रानुसार इसके चार वर्ण मानते हैं:—

(१) विप्र वर्ण = जो स्वच्छ श्वेत और तेजवान हो।
(२) क्षत्रियवर्ण = जो लाल हो वा उसमें लाली झलके
(३) वैश्य वर्ण = जो पीत हो वा श्वेत-पीत मिश्रितहो
(४) शूद्र वर्ण = कृष्ण वा हरित-श्याम मिश्रित।

और इनके अतिरिक्त जिनमें कई मेल की छाया पाई जाय वह 'सङ्कर' कहाता है।

गुण

हिन्दुस्तान में जैसे और वस्तुओं के गुण अवगुण देखे जाते हैं और उनके फलाफल मानते हैं, वैसे ही हीरे के भी गुणदोष माने जाते हैं। निर्दोष हीरा पहिरने से तेज, बल और आरोग्यता की वृद्धि होती है, अकालमृत्यु, व्याधि इत्यादि की शान्ति होती है। उत्तम हीरा वही होता है जिसमें चमक, दमक, तेज तथा निर्मलता हो और जो बिजलीवत् चमक दिखावे जो, अन्धेरे



महाराजाधिराज विजयचन्द महताब बहादुर।



राजा बनबिहारी कपूर।

में भी चमके और सूर्य की किरण में रखने से इन्द्र-धनुषवत् रङ्गत दे और नीचे लिखे दोषों से शुद्ध हो।

दोष

हीरे में पांच दोष सहज वा प्राकृतिक होते हैं। इसके अतिरिक्त उसकी बनावट में भी अनिष्ट दोष मानते हैं, जिनका वर्णन और फलाफल नीचे लिखा जाता है। हीरे के ५ प्राकृतिक दोष ये हैं—(१) छींटा वा बिन्दु दोष। (२) चीर जो बिना टूटे भी टूटा वा फूटा सा देख पड़े, अर्थात् उसमें चीर वा लकीर सी दिखाई दे। (३) डूग। (४) कर्क रङ्ग—जिसका रङ्ग सरोतर बराबर न हो। (५) काकपद—जिसमें जाला सा पड़ा हो वा कई लकीरें कटी हों, जिसमें कागपद सा प्रतीत हो। इनके भी कई भेद हैं जो नीचे लिखे जाते हैं—

(१) छींटा वा बिन्दुदोष चार प्रकार का होता है। (क) बिन्दुदोष—जिस नग में अति सूक्ष्म लाल बिन्दु हो वह धन और धान्यहर है। यदि कई छिटक रुधिरवत् हों तो उसे रैफल कहते हैं। कोई कोई बिन्दुदोष को रैफल से अलग मानते हैं, कोई नहीं मानते। यह शीघ्र बिनाश को करता है। (ख) परिवर्त-गोलबिन्दु पर कुछ बड़ा। रोगजनक है। (ग) यवाकृति-जिसमें यव का सा आकार हो। यह रोग और हानिकारक होता है। यह तीन प्रकार के हैं, राते, पीते, सेत। (घ) आवर्त—वृत्ताकार बूटी जिसमें हो, शून्य के रूप सा, अर्थात् मध्य में पोला हो और गोल घेरा हो।

(२) चीर के भी चार प्रकार हैं। (क) अर्द्ध रेखा—जो रेखा अर्द्ध चन्द्रवत् वक्र हो यह मृत्युकारक होता है। (ख) मूसलाकृति-सुखनाशक होता है। (ग) त्रास—जो 'बिनटूटा टूटा दरसावे', अर्थात् जिसमें दरार सी देख पड़े। (घ) लाल वा पीली रेखा आयुहर होती है और काली रेखा कलङ्कदायक है, पर श्वेत अच्छी होती है यदि वह दहिने पार्श्व में हो। बाएं पार्श्व का चीर मध्यम गिना जाता है।

और शेष दोषों में प्रभेद नहीं हैं। इनके सिवाय हीरे की बनावट में भी दोष मानते हैं। जैसे अष्टास्य, षटास्य, तीक्ष्ण धार का नग पुरुष को पहिनना शुभदायक होता है। ये पुरुषत्व को बढ़ाते हैं। गोल, चिपटा, त्रिकोण नग स्त्रियों के लिये उत्तम है। इसके विरुद्ध होने से अशुभ मानते हैं। कहा जाता है त्रिकोण हीरा पुरुषत्व को बढ़ाता है।

हीरे का दाम उसके रंग, ढंग, अंग, संग और तौल पर निर्भर है जो अभ्यास और शिक्षा बिना नहीं आ सकता। 'सवारी' पर चढ़ा, अर्थात् किसी आभूषण में कांटे पर जड़ा हुआ, नग अधिक भड़कीला हो जाता है। उक्त दोषों को छिपाने के लिये भी नीचे कटोरी रख कर जड़ देते हैं।

खोटे वा कृत्रिम हीरे

पांच प्रकार के पदार्थ ऐसे हैं कि जिनमें चमक होने के कारण वे हीरेसदृश प्रतीत हो सकते हैं और उनसे धोखा हो सकता है। यों तो सब हीरे की तुलना नहीं कर सकते, पर नीचे कटोरी देकर जड़ देने पर उनमें कुछ चमक दमक बढ़ जाती है और हीरेवत् प्रतीत होने लगते हैं। कभी कभी हीरे के दोषों को छिपाने के लिये भी ऐसी ही जड़त कर देते हैं जिससे सूक्ष्म दोष दिखाई नहीं देते। उक्त ५ प्रकार के पदार्थ ये हैं—

(१) पुखराज—इसकी रत्नों में गिनती है। इसका विशेष वर्णन किसी समय पाठकों के अवलोकनार्थ लिखा जायगा। यह हीरे से नरम होता है पर अन्य रत्नों से कठोर। (२) तुर्मली—यह भी एक प्रकार का नग है। यह कुछ पीत (जर्दी मायल) होता है। इसमें मैलापन रहता है। इसको दासा और रूक्ष भी कहते हैं। (३) कांसला-इसमें तेज और चमक कम होता है, तौल में बहुत हलका होता है और नरम पत्थर है। (४) बिल्लौर—इसमें भी चमक नहीं होती, तौल में कम होता है, लाली वा जर्दी मारता है। (५) कांच—अब तो कांच

बिलायत में बड़े स्वच्छ बनने लगे हैं। कांच के झूठे नग बन कर अंगूठी इत्यादि में जड़े हुए बहुत बिकते हैं, देखने में भी सुन्दर होते हैं, तौभी कटोरी पर कलई करके जमाए बिना उनमें भी चमक कम रहती है। यह सब नगों से नरम होता है।

खोटे और खरे की पहिचान बड़ी कठिन है। हां, सान पर रखने से यह ज्ञात हो जाता है। हीरे को शूद्रवर्ण का हीरा ही खुरच दे सकता है, पर हाथ के बल से यह रगड़ नहीं आ सकती और दूसरे नगों पर हीरे की रगड़ आ जाती है। इस रीति से खोटे खरे नगों की पहिचान हो सकती हैं।

बड़े हीरे

इस जगत में सबसे बड़ा हीरा पोरचुगल के महाराज के पास है। यह नई खान का हीरा है, पर अभी तक काटा छांटा नहीं गया है। जब यह मिला था तब कुछ और भी बड़ा था। पर जिस भृत्य ने इसे पाया था उसने परीक्षा करने को एक उस पर चोट मारी जिससे वह कुछ टूट गया। तो भी उसकी तौल अब १६८० केरात अर्थात् लगभग ३३६० रत्ती है। इस अवस्था में भी इसका दाम ३० करोड़ रुपए से अधिक है।

एक दूसरा बड़ा प्रसिद्ध हीरा रूस के सम्राट के राजचिन्ह (Sceptre) में लगा हुआ है। इसको तौल ७७९ केरात अर्थात् १५५८ रत्ती है। यह हीरा पहिले हिन्दुस्तान के एक द्वीप में, जिसका नाम मालाबार है, एक देवमूर्ति की एक आंख में लगा था। एक फरासीसी मनुष्य, जो पहिले वहां की सरकारी सेना में नौकर था, नौकरी छोड़ कर उस मन्दिर का पुजारी हो गया था और वहां से वह हीरा चुरा कर अंगरेज़ी राज्य में चला आया। मन्दराज में उसने इस रत्न को किसी कप्तान के हाथ २०००० रु० को बेच डाला। फिर एक यहूदी ने ८७०००० रु० देकर उसे मोल लिया और अन्त में सन् १७६६ में एक यूनानी सौदागर ने इसे नीलाम कर दिया, जिसे रूस के महाराज ने मोल ले लिया।

यह कबूतर के अण्डे के बराबर है और इसका आकार भी चिपटे अण्डे के सदृश है।

कोहनूर का वृत्तान्त तो पाठक पढ़ही चुके हैं। उसको फिर लिखना अनावश्यक है।

हैदराबाद के निज़ाम के पास भी एक बड़ा हीरा है जिसकी तौल ३४० केरात अर्थात् ६८० रत्ती है।

और भी कई बड़े रत्न हैं। उनका विवरण यहां अरोचक समझ कर नहीं दिया गया।

रङ्गीन हीरों में दो बड़े नामी और प्रसिद्ध हीरे हैं। एक हरे रङ्ग का हीरा है जिसकी तौल ३१ केरात अर्थात् ६२ रत्ती है। यह ड्रेसडन के संग्रह (Dresden collection) में रक्खा हुआ है। दूसरा नीले रङ्ग का ठीक नीलम के सदृश है। यह तौल में ४४ केरात अर्थात् ८८ रत्ती है, जो होप के संचय (Hope collection) में वर्तमान है। इसका रङ्ग ऐसा गहिरा है कि कोई कोई इसे नीलम ही समझते हैं, पर यह वास्तव में हीरा ही है।

हम लोग सुना करते हैं कि हिन्दुस्तान में कई कारीगरों ने मिश्री के हीरे ऐसे बनाए थे कि अच्छे अच्छे जौहरी तक धोखा खा गए थे। यदि मक्खी उन पर न बैठती, अथवा पानी में वे न गल सकते, तो अवश्य वे सच्चे हीरे माने जाते। पर आधुनिक विज्ञानशास्त्रज्ञ महानुभावों ने मिश्री के योग से सचमुच के सद्गुणसम्पन्न हीरे बना लिए हैं। पाठकों को बड़ा आश्चर्य होगा, पर यह सत्य है। हां, अभी ये हीरे छोटे कणवत् बने हैं, बड़े हीरे अभी नहीं बनाए जा सकते हैं। क्या आश्चर्य है कि कुछ समय में बड़े 'थान' भी हीरों के बनाए जा सकें। जब उनकी बनावट का तत्व विदित हो गया तो अब कठिनाई थोड़ी रह गई है। इस विषय पर किसी समय पृथक लेख पाठकगण के सम्मुख उपस्थित करूंगा।

ठाकुरप्रसाद।

प्राचीन भारतवासियों का पहिरावा

पाठक! आपने किसी कोटपतलूनधारी बाबू को यह कहते सुना होगा "हमारे बाप दादे तो असभ्य थे, एक धोती लपेटे नंगे फिरा करते थे, तो क्या हम भी उनकी चाल चलें", अर्थात् उनके मत में कोई पहिरावा इस देश का नहीं है, सब विदेशी हैं।

सबसे प्रथम बकनन हमिल्टन (Buchnan Hamilton) ने अपने "ईस्टर्न इण्डिया" नामक पुस्तक में यह सम्मति प्रगट की कि प्राचीन हिन्दू जाति सिले हुए वस्त्र के व्यवहार से पूर्णतया अनभिज्ञ थी, उनका प्रचार मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् हुआ। तब से म्योर (Miur) और वाट्सन (Watson) प्रभृति यूरोपीय विद्वानों द्वारा इस का पोषण होता आया; किन्तु जिस आधार पर यह सम्मति स्थिर की गई वह दृढ़ नहीं प्रतीत होती। इसकी सम्यक् विवेचना के लिये दो द्वार उपलब्ध हैं, (१) प्राचीन ग्रन्थ और (२) प्राचीन मूर्त्तियां।

वेदों से वस्त्रों के उस समय किसी रूपविशेष में व्यवहृत होने का पता नहीं चलता कदाचित् सर्वसाधारण में धोती इत्यादि के धारण करने का ही अधिक प्रचार था। कर्नल टेलर मुक्तकण्ठ से कहते हैं, "चलने, बैठने और लेटने में इसने बढ़ कर सुगमताप्रद पहिरावे का आविष्कार करना असम्भव है"। सिकन्दर के साथियों को २२०० वर्ष पूर्व, उसी पहिरावे का सर्वसाधारण में प्रचार देख पड़ा था जो आज दिन प्रचलित है। किन्तु अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि सर्वसाधारण की भांति क्या राजा और उनके मन्त्रिवर्ग तथा दूसरे उच्चश्रेणी के मनुष्य भी धोती और चादर ही पर संतोष करते थे? ऐसी एकरूपता तो कदाचित् असभ्य से असभ्य जातियों में भी होनी असम्भव है, तो फिर 'हिन्दू' ऐसे उन्नतिशील लोगों के विषय में, जिन्होंने 'जाति-भेद' की प्रथा स्थापित की, यह अनुमान कहां तक यथार्थ होगा? इस विषय में प्रमाणों का सर्वथा अभाव भी, जैसा कि कुछ लोगों को भ्रम है, नहीं है।

ऋग्वेद में, जिसका समय साधारण अटकल से ईसा से २००० वर्ष पूर्व निर्धारित किया गया है, सूई और सीने का उल्लेख है (सिव्यतु अपह शूच्य छेद्यमानय॥ २।२८८॥)। मूल शब्द "शूची" है जिसके लिये यह अनुमान बांधना कि उससे कांटे या और किसी नोकीली वस्तु से अभिप्राय है, उपहासजनक होगा। यह भी विचार करने का स्थल है कि प्राचीन आर्य्य लोहे के शस्त्र इत्यादि बनाने में कुशल होकर भी सूई से पूरे अनभिज्ञ बने रहते। कर्नल टेलर के इस कथन के प्रत्युत्तर में, कि प्राचीन 'हिन्दू-जाति में दरजी का होना प्रामणित नहीं है और न उनकी भाषा में इसके लिये कोई शब्द हैं', यह वक्तव्य है कि अमरसिंह के कोष में, जो ईसा से पूर्व का माना जाता है, दो शब्द दरजी के लिये पाए जाते हैं,—एक 'तुन्नवाय' और दूसरा "सौचिक" (तन्तुवायः कुविन्दः स्यात्तुन्नवायस्तु सौचिकः—अमरकोष)। इस दूसरे शब्द का व्याख्या पाणिनि के सूत्रों में भी विद्यमान है। उशनस के प्राचीन धर्म्मशास्त्र में वैश्य और शूद्रा के संयोग से उत्पन्न को, एक भिन्न जाति में विभाजित करके 'सीना' और दूसरे हाथ के काम उनके निर्वाह-हेतु स्थिर किए हैं। वे उस समय "शौचों" कहलाते थे।

रामायण, महाभारत और अन्यान्य प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में ऐसे ऐसे पहिरावों का वर्णन है जो कदापि बिना सूई की सहायता के नहीं बन सकते। उदाहरण-स्वरूप मैं यहां पर कुछ संस्कृत शब्दों को उद्धृत करता हूं, जो भिन्न भिन्न पहिरावों को सूचित करते हैं—जैसे, (१) कंचुक, (२) कञ्चुलिक, (३) अंगिका, (४) चोलक, (५) चोल, (६) कुर्पासक, (७) अधिकाङ्ग और (८) नीवी, इत्यादि। इनमें से प्रथम के विषय कुछ कहना आवश्यक है।

इस शब्द (कञ्चुक) का अर्थ इस प्रकार किया गया है–"सैनिकों का कुर्त्ते की भांति एक पहिराव"। 'सन्नाह' के, जिसका प्रयोग लोहे के कवच और सूत के बने दोनों प्रकार के पहिरावे के किया जाता है, इस शब्द का पर्य्यायवाची लिखा देख बहुत से आधुनिक कोषों में इस कञ्चुक का अर्थ इस प्रकार कर डाला गया है–"वाणों से रक्षा-निमित्त लोहे का एक पहिराव"। किन्तु इससे प्राचीन काल में सूत के बने पहिरावों से भी अभिप्राय था, यह बात इसका व्यवहार सैनिकों के अतिरिक्त अन्य श्रेणी के मनुष्यों में भी दिखा देने से प्रामाणिक हो जायगी। युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के समय ऋषियों का "कञ्चुक और पगड़ी धारण करना महाभारत में वर्णित है। विविशुस्ते सभां दिव्यां सोष्णीषां धृतकञ्चुकाः)। क्या ऋषिगण गम्भीर गम्भीर कवच धारण करके आए थे? और देखिए, राजाओं के अन्तःपुर-रक्षार्थ जो षंड नियत रहते थे, उन्हें "कञ्चुकी" कहते थे, अर्थात् 'कञ्चुक' धारण करनेवाले। तो क्या वे सदैव लोहे के बख़्तर पहिने फिरा करते थे?

'कञ्चुक' से तात्पर्य्य आधुनिक जामे से है; राजाओं के मन्त्री और अनुचरगण प्रायः इसी वेश में रहते थे। अङ्गिका—इसका प्रचार अद्यापि दो एक प्रान्तों को छोड़ इस देश में है। यह एक प्रकार को कुर्त्ती होती है जिसको हिन्दी में "अङ्गिआ" कहते हैं। जिन्हें प्राकृत का ज्ञान है उन्हें यह समझते कुछ भी विलम्ब न लगैगा कि यह संस्कृत 'अङ्गिका' का अपभ्रंश है। क एक प्रसिद्ध सूत्र (कादीनां लोपः - वररुचि ॥२।२॥) के अनुसार अ में परिवर्तित होगया। अधुनिक शब्द 'अंगरखा' भी, यदि वह अंग + रक्षा का अपभ्रंश न हो तो इसी शब्द का एक परिवर्तित रूप है। चोल आधुनिक 'फतुई के सदृश होता था। नीवी शब्द भी बड़े काम का है। यह इज़ारबन्द का नाम है जो घाघरे में डाला जाता है। यदि उस समय घाघरे नहीं थे तो इस नीवी की क्या आवश्यकता थी? यहां तक तो प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर प्रमाणों की स्थिति हुई, अब देखिए प्राचीन प्रतिमाकार इस विषय में क्या कहते हैं।

यद्यपि सांची और अमरावती प्रभृति स्थानों की अधिकांश मूर्त्तियां नग्नावस्था या अर्द्ध नग्नावस्था में प्रदर्शित की गई हैं, किन्तु इनमें से कुछ ऐसी भी हैं जो इसके विपरीतता की साक्षी देती हैं। अमरावती की असंख्य नग्नमूर्तिसमूह में ऐसी मूर्त्तियां भी पाई जाती हैं जिनका पहिराव दरजी के अस्तित्व से सम्बन्ध रखता है। सांची के दोनों धनुर्धारियों के चित्र में, जिनमें से एक काशी के बौद्धराजा पिलियुक का है, चपकन प्रत्यक्ष है।* बुद्धगया के, जिसका समय 'सांची' से प्राचीनतर है, एक शिलाखण्ड पर दो मूर्तियां गले से पैर के अर्द्ध भाग पर्य्यन्त एक प्रकार के पहिरावे से सुसज्जित हैं जो ठीक आधुनिक 'जामे' के सदृश है।

'उड़ीसा' के प्राचीन अवशेषों में इससे दृढ़तर प्रमाण पाए जाते हैं। 'उदयगिरि' की गुफाओं में 'रानीनौर' नामक स्थान में ४ फ़ीट ६ इंच ऊंची एक मूर्त्ति चट्टान में कटी है, जिसपर एक चुस्त चपकन दिखाया गया है, जिसका दामन घुटनों से चार इञ्च नीचे लटकता है। एक पतला दुपट्टा बाएं कन्धे से आकर कटि को आवृत किए है, जिसका प्रचार आज दिन भी उसी प्रकार चला जाता है। कटि-प्रदेश में एक कटिबन्ध भी है जिसके बाएं ओर एक तलवार लटक रही है। इस मूर्त्ति का सिर खण्डित हो गया है, किन्तु जो शेष है उसमें पगड़ी का चिन्ह विद्यमान है। पैरों में लम्बे बूट भी दिखाए गए हैं! डा० राजेन्द्रलाल मित्र के मतानुसार इस मूर्त्ति की अवस्था २२०० वर्ष की अनुमान की गई है।†

पहिरावे की चाल विशुद्ध 'हिन्दू' है। कोई मनुष्य उसमें Chiton (चिटन), Chlamys (क्लमिस) या सिकन्दर के अन्य किसी सैनिकों द्वारा लाए

* Fergusson, plate xliii.

† Antiquities of Orissa;

हुए पहिराव से समानता दिखलाने का साहस नहीं कर सकता; यदि यह किसी प्रकार मान भी लिया जाय कि हिन्दू ऐसे स्वप्रथाभक्त लोग एक ऐसे पहिराव को, कि जिसका आविर्भाव किसी अन्य दूर देश में हुआ हो, देखते ही इस सीमा तक अनुकरण करने लगें कि उसे अपने शिल्पकार्य्य में स्थान दें। यद्यपि यह चपकन असीरियन (Assyrian) लोगों के पहिराव से किसी किसी अंश में समनाता रखता है, किन्तु मुख्य विभिन्नता बांह (आस्तीन) देखने से विदित हो जायगी। असीरियनों की आस्तीन टेहुनी पर्य्यन्त होती थीं, किन्तु इस चपकन की कलाई तक लम्बी है। हां, बूट वास्तव में आश्चर्य्यजनक हैं। कहीं किसी स्थल पर इस प्रकार का अन्य उदाहरण इस देश में प्राप्त नहीं है। 'अमरावती' के तीनो सैनिकों के चित्र भी प्रायः इसी वेश में हैं, किन्तु बूट का अभाव है।

अजण्टा गुफा की चित्रावली में संतो के एक साथ दो चित्र हैं, जिनमें से एक दहिने हाथ से एक हाथी का मस्तक स्पर्श कर रहा है और बांए में एक पात्र है। इसके शरीर पर एक पैर तक लम्बा वस्त्र पड़ा है, जिसकी बाहें पूरी और बहुत ढीली हैं। इन चित्रों के निर्माण का समय ईसवी ५ शताब्दी के लगभग है।

°यह बात तो सत्य है कि ऐसे उदाहरण अधिकता से नहीं पाए जाते, किन्तु जो हैं वे इस विषय पर ध्रुव और संशयशून्य प्रमाण हैं। इस देश का जल वायु इस प्रकार का है कि वर्ष में नौ महीने किसी प्रकार का वस्त्र शरीर पर रखना सुखदायक नहीं है। इस बात का आगन्तुक योरोपियन भी अनुभव करते हैं। तो क्या आश्चर्य्य है कि इस देश के निवासी सामयिक प्रथा के अनुसार, जहां तक संभव होता, कम ही वस्त्रों का व्यवहार करते थे। यहां तक तो पुरुषों के पहिरावे का वर्णन हुआ। अब स्त्रियों के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है।

प्राचीन ग्रन्थों में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, स्त्रियों के कई भिन्न भिन्न पहिरावों का उल्लेख है। किन्तु प्राचीन ग्रन्थों और मूर्त्तियों में इस विषय में परस्पर विरोध है। मि० फ़र्गुसन ने इस विषय में कहा है, कि स्त्रियों के पहिरावे का वर्णन करना कठिन है। इसका कारण उसका अभाव ही है। सांची और अमरावती की मूर्त्तियों में स्त्रियां टेहुनी और कलाई में आभूषण अधिकता से पहिने हैं, गले में माला या हार भी प्रायः है, किन्तु शरीर को आवृत करने को केवल एक मात्र गजरा कटि प्रदेश के नीचे लपेटा हुआ पाया जाता है।* और कहीं कहीं वस्त्रनामधारी पुरुषों की धोती के सदृश एक फेंटा भी देखने में आता है—इत्यादि।

अब यहां पर यह विचार करना है कि इस वेश का इस देश में स्त्रियों में प्रचार ही था या यह केवल एक साम्प्रदायिक प्रथा उनको इस रूप में प्रदर्शित करने की थी। मि० फ़र्गुसन का विश्वास प्रथम ही पर है। किन्तु इस पर हम लोगों को विश्वास क्यों कर हो सकता है। ऐसे समय में, हिन्दू लोग जब वे सामाजिक उन्नति में किसी से पीछे न थे, तिमहले मकानों में रहते थे जैसा कि सांची के अवशेषों से प्रगट है, गाड़ी और सोने चांदी से विभूषित रथों पर निकलते थे, बने हुए वस्त्र अन्यान्य देशों को भेजते थे, जिनकी वहां प्रतिष्ठा होती थी,—तो कब संभव है कि उनकी रानी महारानी केवल एक गजरा या फेंठा धारण किए उन पर आधिपत्य रखती थीं। 'बौद्ध' और 'हिन्दू' दोनों के धर्म्मशास्त्र स्त्रियों को पटावृत रहने का अनुरोध करते हैं†। यदि नग्नता इस देश की प्रचलित प्रथा होती तो, वह स्त्री और पुरुष दोनों में समभाव से पाई जाती, किन्तु पूर्वोल्लिखित

* Tree and serpant worship, 92.

† नानुक्ता गृहान्निर्गच्छेत, नानुत्तरीया न त्वरितं व्रजेत न पर पुरुषं भाषितान्यत्र वणिक्प्रव्रजित वृद्धवैद्यभ्यः न नाभिन्दर्शयेत आगुल्फाद्वासः परिदध्यात् न स्तानौ विवृतौ कुर्य्यात ॥ इति शङ्खः ॥, नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियं ॥ मनु ४-५३ ॥

प्रमाणों के अनुसार यह सिद्ध नहीं होता। संसार की असभ्य जातियों में पुरुष और बालक बहुधा नंगे फिरा करते हैं, किन्तु स्त्रियां उनकी और कुछ नहीं तो पत्तों ही से अपना शरीर ढाकती हैं, सो यह निष्कर्ष इन मूर्त्तियों से निकालना कि स्त्रियों में उस समय नग्नता प्रचलित थी, सर्वथा भ्रममूलक है। मेरी जान में तो प्रतिमाकारों ने उनके शरीर की बनावट ही दिखाने के हेतु उन्हें इस अवस्था में निर्माण किया है। इसका एक उदाहरण लीजिए। अमरावती के उस वृहत शिलाखंड में, जो इस समय कलकत्ते के म्यूज़ियम में है, मायादेवी का चित्र है, जो एक गद्दे पर सोई हुई हैं, सिरहाने बडा तकिया भी है, सेवा में कई शस्त्रधारी पुरुष, और दासियां चँवर लिए खड़ी हैं। किन्तु उनके शरीर पर गजरे के कटिबन्ध के अतिरिक्त और कुछ नहीं है*। इस प्रकार के उदाहरण मिश्र और यूनान आदि देशों मे भी पाए जाते हैं। अतः यह सिद्ध हुआ कि पुराकाल में उसी प्रकार के पहिरावे प्रचलित थे जो प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित हैं।

राजाओं के मन्त्री और अनुचरगण प्रायः जामा पहिनते थे। राजा और सैनिकलोग, जिस समय उन्हें कवच की कोई आवश्यकता न रहती थी, एक प्रार का वस्त्र धारण करते थे जो आधुनिक चपकन के सदृश होता था। साधारण जन धोती और चादर ही पर सन्तोष करते थे। सिर पर एक पगड़ी प्रायः उनके इस वेश को पूर्ण करती थी। स्त्रियों में 'साड़ी' का ही आधिक प्रचार था। प्रतिष्ठित घर की स्त्रियों में 'घाघरा' और कुर्ती, और कभी कभी ऊपर से एक अंगिया भी धारण करने की रीति थी। जब वे कहीं बाहर जातीं तो इन सबके ऊपर एक चादर भी डाल लेती थीं।

यह हम मानते हैं कि बङ्गाल इत्यादि प्रान्तों में अधिकांश दरजीसमूह मुसलमान हैं (कदाचित् इसी बात ने मिस्टर हमिल्टन को भ्रांति में डाला हो) किन्तु यह सर्वत्र घटित नहीं होता। मिस्टर शेरिङ्ग (Mr. Sherring)* का कथन है कि इस देश में मुसलमान दरजिओं के अतिरिक्त बहुत से नीच हिन्दू भी इस व्यवसाय के अनुगत हैं, जोकि सात जातिओं में विभक्त हैं—(१) श्री वास्तक, (२) नामदेव, (३) तांचार, (४) धनेश, (५) पञ्जाबी, (६) गौड़, (७) कण्टक, और एक आठवीं जाति ताक्लेरी भी बनारस में पाई जाती है।†

रामचन्द्र शुक्ल।

* Tree and serpant worship, 92.

* Hindu Castes and Tribes of Benares.

† डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र के लेख के आधार पर।

बीजापुर का इतिहास

युसफ आदिल शाह

१४८९-१५१०

तुर्की सुलतान मुराद के छोटे लड़के यूसफ़ आदिल ने बीजापुर का राज स्थापित किया। सन् १४४३ ईस्वी में इनका जन्म हुआ था। सुलतान के वंश में अत्यन्त निर्दयीपन की यह प्रथा थी कि राजकुल में एक को छोड़ और जितने राजकुमार होते सब मार डाले जाते थे। इसी प्रथा के अनुसार सुलतान मुहम्मद के सिंहासन पर बैठते ही उनके जितने सहोदर भाई थे सबको मार डालने की उन्होंने आज्ञा जारी की। जिन लोगों के मारने की आज्ञा जारी हुई थी, उन्हींमें से एक का नाम यूसफ़ था। यूसफ़ की माता ने अपने बच्चे की जान बचाने के लिये अनेक प्रयत्न किए, पर भाग्यवश उसकी एक भी कला काम न आई। निदान उन्होंने लाचार हो यह युक्ति की कि फारस के रहनेवाले एक व्यापारी की जिसका नाम इमामुद्दीन था और जो कुस्तुनतुनिया में रहता था, सहायता से अपने लड़के यूसफ़ के बदले किसी और लड़के को राज के जल्लादों को सौंप अपने लड़के को उसी व्यापारी को सौंप दिया।

व्यापारी ने उसकी जान बचाने की उसकी माता से प्रतिज्ञा कर ली थी, इसलिये इमामुद्दीन ने युसफ़ को फ़ारस के राज्य में ले जाके उसके पढ़ने लिखने का अच्छा प्रवन्ध कर दिया। वहां भी युसफ़ की पहिलीं बातें प्रकाश हो गईं। इससे वह बिचारा फिर बड़ी विपत्ति में पड़ा। अन्त ज्यों त्यों अपनी जान बचा के यूसफ ने एक रात यह स्वप्न देखा कि जो तू भारतवर्ष में चला जाय तो तेरी जान बच जायगी। इस स्वप्न को देख सन् १४६१ ई० में वह फारस से भारत के रत्नगिरि नामक स्थान में आया। उस समय वह १७ वर्ष का था। जैसा वह रूपवान था वैसा ही विद्वान भी था। फारस के रहनेवाले किसी सौदागर ने उसे रत्नगिरि से बहमन की राजधानी विदूर में बुला लिया। वहां युसफ़ वज़ीर मुहम्महद गवान की मेहरबानी से फ़ौज में भर्ती हो गया और उसकी तरक्की भी जल्दी हो गई। विदूर से बहाउ में जाके वह १५०० सवारों पर अफ़सर हो गया और उसका नाम आदिल खां हुआ। इसके उपरान्त मुहम्मद गवान ने उसे दौलताबाद का गवर्नर बना दिया। पीछे मुहम्मद के मर जाने पर बीजापुर के बहमनी राजा के यहाँ उसे कोई सर्दारी मिली। ईश्वर की दया से उसने सन् १४८९ ई० में पराधीनी की बेड़ी उतार स्वाधीन हो स्वयम् राजा बन बीजापुर में अपना राज्य स्थापन कर लिया। १४९८ ई० में सुलतानों ने दक्षिण के देशों को आपस में बांट लिया। उस समय गोआ और उसकी आस पास की जगह यूसफ़ के बांटे में आई। उसी समय वास्को-डी-गामा भारतवर्ष का नया रास्ता निकाल कर्नाटक के तट पर आ गया था। उस समय यूसफ़ बीजापुर का अधीश्वर था। गोआ के लिये उसको पुर्तगीज़ों से खूब लड़ाई हुई। १५०९ ईसवी में पुर्तगीज़ों के राज्य प्रतिनिधि अल-बुकर्क ने बीजापुर के विपक्ष में विजयनगर के राजा के साथ सन्धि करली। दूसरे वर्ष अलबुकर्क ने बीजापुर विजय कर, गोआ में पुर्तगीज़ों की पूरी अमलदारी जमा ली।

दो सौ वर्ष के बीच में बीजापुर की रियासत में नौ मनुष्यों ने राज्य किया, पर उनमें से किसी एक ने भी सुख से राज्य न भोगा। उसकाल में ऐसा समय ही न था कि निर्द्वन्द कोई कहीं का राज्य करता। नित्य नए लड़ाई झगड़े टण्टे बखेड़े लगे ही रहते थे। ऐसे समय में उसे अपना राज्य संभालना कठिन हो रहा था। शीया और सुन्नियों में आपस की लड़ाई, पड़ोसी सुलतान से लड़ाई, बिजयनगर के हिन्दू राजाओं से लड़ाई, मुग़लों के साथ लड़ाई;-ऐसे मौके पर बीजापुर के स्वामी को अपने राज्य के सुधार का कभी मौका न मिला।

शीया और सुन्नी।

युसफ़ आदिलशाह को, फारस में रह कर और उसी ठौर पढ़ लिखकर शीया सम्प्रदाय पर भक्ति हो गई थी। इसीसे उन्होंने अपने राज्य में शीया सम्प्रादय चलाना चाहा था। पर इसमें बड़े झगड़े उठे। उनकी सेना में जो तुर्क थे, वे लोग सुन्नी थे और राज्य के आस पास के सुलतानों को भी शीया का पक्ष न था। इसीसे दक्षिण में उस समय जो लड़ाइयां हुई थीं उन्हें धर्म्मयुद्ध कहना चाहिए। अहमदनगर, गोलकुण्डा और बिदूर के सुलतानों ने उनसे द्वेष मान लड़ाइयां की जिनसे बड़े बखेड़े हुए और बड़े परिश्रम से यूसफ़ ने अपना पल्ला छुड़ाया। यूसफ़ बहुत कट्टर शीया भी न था। उसने अपने राज्य में तो शीया सम्प्रदाय स्थापित किया। पर सुन्नियों के धर्मकर्म में विशेष हस्तक्षेप भी नहीं किया। धर्मकर्म में उसकी उदारबुद्धि थी। वह कहा करता कि "जैसे स्वर्ग में अनेक भवन हैं, वैसे ही इस्लाम के अनेक सम्प्रदाय हैं। हिन्दुओं पर भी उसकी विशेष दया थी। उसने एक महाराष्ट्रिन से विवाह कर हिन्दुओं में भी अपनायत बना ली थी।

मरहठिन के गर्भ से जो पुत्र जन्मा उसका नाम इस्माइल था। यूसफ़ की मृत्यु के उपरान्त इस्माइल आदिलशाह गद्दी पर बैठै। वह तो शीया थे

पर उनके मन्त्री कमाल खां सुन्नी थे। राजा ग्रौर वज़ीर में ग्रापस में ग्रनबन हो गई ग्रौर नित्य की खटपट चलने लगी। वज़ीर के जी में था कि शाह को मार कर ग्रापही गद्दी दबालें ग्रौर राज्य में फिर से सुन्नी सम्प्रदाय फैला दें।

कुछ दिन में ग्रवसर पाकर कमाल ख़ां ने सुलतान ग्रौर उसकी माता को राजमहल में नजर कैद रख छोड़ा। रानी ने ग्रपने को ग्रौर ग्रपने पुत्र को कैद होते देख कमाल ख़ां को मरवाने के लिये किसी एक बड़े विश्वासी तुर्क को लगाया। वह तुर्क मक्का जाने का बहाना कर कमाल ख़ां से भेंट करने गया। ज्योंही मन्त्री ने तुर्क के हाथ में पान देने के लिये ग्रपना हाथ बढ़ाया त्यों ही जैसे बाज लवा पर झपट के उसे ग्रपने चंगुल में फंसा लेता है, वैसे ही उसने चट उसकी कलाई पकड़ ग्रपनी ग्रोर खींच कर ऐसी तलवार चलाई कि एक ही हाथ में कमाल ख़ां का ढेर कर दिया। फिर तो उस तुर्क पर दरबारी टूटी पड़े ग्रौर उसके उसी जगह टुकड़े टुकड़े उड़ा दिए गए। मन्त्री ग्रौर उसके मारनेवाले दोनों ही की लोथ एक ही स्थान में ढेर हो गई।

सुलताना के समान मन्त्री की माता भी साहसवती ग्रौर ग्रपनी बात की पक्की थी। उसने ग्रपने बेटे की स्थान पर पोते के बैठाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। पोते का नाम सफ़दर ख़ां था। उन्हों ने सब लोगों में जाहिर कर दिया कि उसका लड़का कमाल ख़ां मरा नहीं है, फक़त उसे चोट ग्राई है। मरे हुए को पहिना कपड़ा पहिना कर पलङ्ग के ऊपर बरामदे में ऐसे ढङ्ग से बैठा दिया मानों वे लोगों की सलाम लेने के लिये कायदे से बैठे हुए हैं। इधर सफ़दर खां थोड़ी सी फ़ौज लेकर महल पर हमला करने चले। बेगम ग्रौर दिलशाद नाम की एक ग्रौरत, जो बेगम साहेबा की सखी थी, दोनों लड़ने के लिये सिपाहियाने पोशाक से दुरुस्त हो, पाले हुए कुत्तों को उत्तेजित करने लगीं। उसके पास उस समय बहुत ग्रादमियों की मदद तो न थी, पर भाग्यवश बाहर से शीया दल के पक्षपाती लोगों का एक दल उसी समय उसकी सहायता को मौके से ग्रा पहुंचा। इस मदद को पाके बेगम के जी में भी ढाढ़स हो गया। ज्योंहीं सफ़दर खां ग्रपनी सुन्नियों की फ़ौज लेकर महल पर हमला किया ही चाहते थे, उसी समय ऊपर से गोला गोली ग्रौर पत्थर बर्सने लगे। शीया ग्रौर सुन्नियों में घमासान लड़ाई हुई। इस युद्ध में बहुत लोग मरे कटे, ग्रन्त सफ़दर खां द्वार तोड़ कर भीतर ग्रांगन में जा घुसे। भीतर जाते ही ग्रौचक उनकी एक ग्रांख में तीर लगा, जिससे वह काने हो गए। यह देख चट एक दीवार की ग्रोट में हो उन्होंने ग्रपनी जान बचाई। उसी दीवार के ऊपर बालक सुलतान बैठे हुए थे। इस्माइल खां ने ग्रपने शत्रु को ताक के ऊपर से एक भारी पत्थर फेका कि उसी पत्थर से सफ़दर खां की जान गई। इस झगड़े के मिट जाने के पीछे बेखटके इस्माइल राज्य करने लगे।

इस्माइल के राज्य के समय, या मुसलमान सुलतानों के साथ, इनकी जो लड़ाइयां हुई थीं उनमें लिखने लायक कोई बात नहीं है। उनका धर्म शीया था, इससे उनकी इज्जत के लिये फारस के शाह ने ग्रपना एलची बीजापुर भेजा था।

महाक्रोधी मल्लू

इस्माइल के पीछे उसका लड़का मल्लू वारिस हुग्रा। मल्लू जैसा क्रोधी वैसे ही कड़े मिजाज का भी था। राज्य को बरबाद होते देख मल्लू की सगी दादी का ग्रपने पोते पर से जी फिर गया, ग्रौर बुढ़िया ग्रपने पोते को राजगद्दी पर से उतारने की सलाह करने लगी। छ महीने राज्य करने पीछे उसके छोटे भाई इब्राहिम ने मल्लू को ग्रन्धा बना के राजगद्दी से उतारा ग्रौर उसपर ग्राप ही बैठा।

इब्राहिम सुन्नी सम्प्रदायी था, इस ने वह सुन्नियों का मान बढ़ाता था ग्रौर शीया सम्प्रदाय को नीचा दिखाता ग्रौर निकाला करता था; यहां तक उसने

तंग किया कि बहुतेरे शीया उसका राज छोड़ के विजयनगर में जा बसे। सन् १५५७ में इसकी मृत्यु हुई। मृत्यु का कारण इनकी कुचाल ही थी। जिस समय यह बीमार हुआ और इसकी चिकित्सा के लिये जो हकीम बुलाए गए थे सभोंने इसके रोग को देख कर असाध्य बताया तो कितनों के हाथ पांव काटे गए और कितनों का सिर काटा गया। एवं अनेकों को हाथियों से कुचलवा कर उसने अपने स्वभाव की पराकाष्ठा जग को दिखाई गई।

इब्राहिम

१५३४-१५५७

इब्राहिम ने जब तक राज्य किया तब तक बराबर राज्य में झगड़ा ही फैला रहा। चौदहवीं सदी के ३० वर्ष के उपरान्त हक्का और बुक्का नामके दो भाइयों ने शृङ्गेरी मठ के मालिक की सहायता से विजयनगर की नेव डाली। सन् १३३५ ईसवी में पहिले पहिले हक्का हरिहरराय विजयनगर की राजगद्दी पर बैठा। थोड़े ही दिन में फिर हसन-गंगू नाम के एक पठान ने अपना नाम अलाउद्दीन रख के दक्षिण में एक बड़ा मुसलमानी राज्य स्थापित किया। हसन गंगू का एक ज्योतिषी पर इतना बड़ा एहसान था कि अपनी कृतज्ञता दिखाने के लिये उसने अपनी 'बिरहमन' पदवी रक्खी और उसके पीछे उसका वंश बिरहमनी के नाम से पुकारा गया। विजयनगर और बिरहमनी सुलतानों में लगातार लड़ाई झगड़ा होता रहा, पर तौ भी आपस का झगड़ा न मिटा। जिस वक्त इब्राहिम बादशाह था, उसी समय विजयनगर की गद्दी पर देवराय नाम का एक राजा था और तिम्मा उसके मन्त्री का नाम था। देवराय की मृत्यु के समय उसका कोई जवान लड़का न था जिसे वह अपना उत्तराधिकारी बना जाता। इस लिये तिम्मा अपने मन के एक लड़के को गद्दी पर बैठा आपही राज करने लगा। जब राजा जवान हुआ, तब तिम्मा ने उसे मरवा के अपने मन के दूसरे किसी लड़के को गद्दी पर बैठा दिया। योंहीं लगातार तीन लड़कों को गद्दी पर बैठाया, पर जब वे बड़े होते थे तब ही मरवाके चट वह दूसरे को राजा बना लिया करता था। अन्त तिम्मा ने देवराय की पोती से अपने लड़के रामराय का व्याह कर चट उसीको राजा बना दिया। तिम्मा की भीतरी इच्छा थी कि राजा के कुल का नाश कर डालूं। चाहे यह लालसा उस की पूरी न हुई, पर तौ भी उसने बहुत कुछ अपने मन का सा कर लिया। अन्त उस राजवंश में पशु समान तिमैल नामी एक मनुष्य और लड़की के वंश में एक राजकुमार रह गए।

मिलने को तो रामराय को राज मिल गया, पर निष्कण्टक होके वह राजसुख न भोगने पाया। गद्दी पर बैठते ही उसका दम्भ और गर्व बढ़ गया। प्रजा इस स्वभाव से चिढ़ कर बागी हो गई और राजा के विरुद्ध आपस में चुप चाप सलाह करने लगी, कि न जाने यह कहां के बनैआ राजा हम लोगों की राजगद्दी पर आ बैठे हैं। इससे हम लोग इन्हें उठाके अपने मन का राजा बनाना चाहते हैं। जब प्रजा के जी की सुनगुनी रामराय को लगी, तो वह चट, बचे हुए राजकुमार को राजगद्दी पर बैठा आप उसका दीवान हो गया, और धीरे धीरे अपने बैरियों का ध्वंस कर राजा को हटा फिर आपही राजा बन बैठा।

इससे भी राज्य में शान्ति न हुई। इधर रुक-चिल्ली तिम्मैल ने उपद्रव मचाया। भीतरी उसका मन भी था कि मैं ही राजा हो जाऊं। इससे तिम्मैल और रामराय में खूब युद्ध होने लगा। बहुत से लोग रामराय के पक्ष पर हो तिम्मैल से लड़ने लगे। इस हालत को देख तिम्मैल ने बीजापुर के सुलतान इब्राहीम को बहुत सा धन रत्न भेज उससे मदद मांगी।

इब्राहीम बड़ी खुशी से इस भेट को मंजूर कर तिम्मैल की मदद के लिये अपनी सेना के साथ विजयनगर में आ पहुंचा। बड़ी भावभक्ति से तिम्मैल

ने इब्राहिम का स्वागत किया। यह बात देखते ही हिन्दुओं में हलचली पड़ गई। हिन्दू राज्य पर मुसलमानों की दस्तन्दाज़ी किसीसे सही न गई। रामराय और उनके पक्ष के लोगें ने तिर्म्मल से कहा कि यदि तुम हमलोगें का कहना माने तो हमेशा हमलोग तुम्हारे ताबेदार बने रहेंगे। इन बातों में लुभाके तिर्म्मल ने बड़ी मिन्नत खुशामद से और लाखें रुपया भरना भरके बड़ी कठिनाई से इब्राहिम को लैटाया। ज्यों ही मुसलमान कृष्णा नदी के पार उतरे, त्योंहीं इधर प्रजा फिर आंख दिखाने लगी। हल्ला उठा कि सब प्रजा बलवा कर के तिर्म्मल को गिरफ़ार किया चाहती है। यह सुनते ही तिर्म्मल के पाओं तले से धर्ती फिसलने लगी, आकाश पाताल सूझने लगा, मारे घबराहट के वह बावला सा हो गया, घोड़े हाथियों की आंखें उखड़वाने लगा, राज-भण्डार के जेवरें को चक्की में डाल पिसवाने और तोड़ फोड़ करने लगा। योंहीं घोर उन्मत्तों की सी कारस्वाई करने लगा। इसी अवसर में बैरियों ने चाहा कि राजमहल पर हमला कर पागल तिर्म्मल को पकड़ लें। यह सुनते ही इस घोर विपद से बचने के लिये, बिना कुछ सोचे बिचारे चट पट उसने आत्महत्या कर डाली।

बैरी के मरते ही निर्भय निष्कण्टक हो रामराय निर्द्वन्द राज्य करने लगे। भाग्य ने ऐसा पलटा खाया कि गई हुई पिछली सम्पदा फिर लैाट आई। यह देख मुसलमानों को बड़ी ही डाह हुई और जी में भय भी उत्पन्न हुआ।

अली आदिल शाह
१५५७–१५८०

इधर इब्राहिम के पीछे बीजापुर के सिंहासन पर अली आदिल शाह बैठे। पहिले तो उन्होंने रामराय से ऐसी मित्रता बढ़ाई कि इसके पहिले कदाचित् ही किसी हिन्दू मुसलमान में यों दूध-बूरे सा परस्पर मेल हुआ होगा। जब रामराय का लड़का मरा, और विजयनगर में आदिलशाह मातमपुर्सी के लिये आए, उस समय विजयनगर के राजा और रानी ने आदिलशाह को अपना लड़का क़रके माना, और वैसा ही बर्ताव किया जैसा पिता पुत्र में होना चाहिए। अहमदनगर से अली की जब लड़ाई हुई, तब रामराय बीजापुर सुलतान की सहायता के लिये पहुंचे थे।

दिनों दिन हिन्दुओं की शेख़ी बढ़ने लगी। युद्ध विजय करने के उपरान्त रामराय मुसलमानों को तृणवत् मानने लगे। मन ही मन सोचते कि अब मेरे मुक़ाबले भारतवर्ष में ऐसा कोई नहीं जो मेरी वार संभाले। इसी घमण्ड में फूल मसजिदों में घोड़साल बना दी, सुलतानों को अपना गुलाम समझने लगे, उनके दूतों का अपने दरबार में मनमाना अपमान करने लगे। इनके ऐसे कर्म्मों को देख सुन जितने सुलतान थे, सबके सब हिन्दुओं पर ऐसे चिढ़े कि आपस का बैरभाव छोड़, लड़ाई झगड़े से मुंह मोड़, अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा, इन स्थानों के अधीश्वर बीजापुर में आ जमे। वहां से सब सुलतान एक साथ मिल बिजयनगर पर हमला करने के लिये कृष्णा-नदी पार हुए। नदी तट पर आके देखा कि उस पार रामराय की फ़ौज नदी के घाट को रोके पड़ी हुई है, बैरी का मोर्चा तोड़ नदी पार होना सहज बात नहीं है। तब सुलतानों ने एक नई युक्ति निकाली। वे उतारे के घाट को छोड़ के नदी के किनारे किनारे कुछ दूर तक आगे बढ़े, माने नदी पार उतरने के लिये कोई दूसरा गम खोज रहे हैं। यह देख रामराय के सेनापति भी अपना ठैार छोड़, जिधर बैरी की सेना जा रही थी, उसी ओर अपनी सेना को लिवा ले चले। लगातार तीन दिन नदी के इस पार मुसलमानों और उधर हिन्दुओं की सेना चली गई। तीसरी रात को एकाएकी मुसलमान फ़ौज पीछे लैाट पड़ी और बेखटके नदी पार उतर गई। दूसरे दिन रामराय की सेना से पांच कोस की दूरी पर मुसलमनी सेना ने अपना पड़ाव डाला।

तालीकोट की लड़ाई—सन् १५८५

सबेरा होते ही दोनों दल का मुकाबला हुआ। दोनों दलवाले तोप, बन्दूक, गोली आदि अस्त्र शस्त्र से लैस थे। मारे क्रोध के हिन्दुओं की वाहिनी ने मुसलमानो फ़ौज के दोनों पक्ष ध्वंस कर डाले, पर बीच वाले अटलभाव से युद्ध करते रहे। बीच की सेना के नायक अहमदनगर के 'दिवाने सुलतान, हुसेन निज़ाम शाह, बड़ी वीरता के साथ रामराय के कटक पर आ टूटे। इनके साथ जो तोप थी, उसमें पैसे भरकर उसे हिन्दुओं की ओर छोड़ा। इस तोप की मार का ऐसा प्रभाव पड़ा कि हिन्दुओं का कटक ठण्ढा पड़ गया, योधाओं की हिम्मत टूट गई, युद्ध करने का हौसला जाता रहा। रामराय अपनी पालकी में बैठ वाहकों से बोले कि पालकी को उठा कुछ आगे ले चलो। जैसी आज्ञा मिली, बिचारे कहारों ने भी वैसाही किया। कुछ दूर जाके कहार पालकी रख आप सब भाग गए। उसी समय घोड़े पर सवार हो ज्योंही रामराय भागा चाहते थे, त्योंही चट मुसलमानों ने घेर लिया और गिरफ़ार करके हुसेन शाह से पास हाजिर कर दिया। हुसेन शाह ने भी अपने 'दिवाना' उपाधि के अनुसार जल्लादों को रामराय का सिर काटने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही सुलतान के सेवक रामराय का मुण्ड काट भाले से गोद फ़ौज में ले घूमे। राजा की ऐसी गति देख सेनामात्र की हिम्मत टूट गई, और जिसे जिधर मौका लगा वह भाग निकला। इसी तालीकोट की लड़ाई में दोनों पक्ष के लोगों की दो लाख मनुष्यों की भीड़भाड़ थी। इस लड़ाई में हिन्दुओं के पक्ष के बहुत लोग मारे गए और जीतनेवालों के हाथ लूट का बड़ा माल मिला। अन्त जिनकी जीत हुई थी, उन लोगों ने नगर में घुस कर मुसलमानी विजयपताका उड़ाई और मनमानी लूट मचाई। उस स्थान में जितने मकान थे सब तोड़ फोड़के गिरा दिए और हिन्दुओं की जो कुछ कीर्ति थी, सब मिट्टी में मिला दी। रामराय का कटा मुण्ड जयस्तम्भरूप से अहमदनगर में भेजा गया और उसी स्थान में पत्थर का एक प्रतिमा बीजापुर में स्थापित की गई। इस पत्थर के सिर को कुछ दिन पहिले तक लोगों ने आर्क किले पर देखा था। तालीकोट की लड़ाई में विजयनगर का ध्वंस हुआ। विजयनगर इसके पीछे फिर न पनपा। विजयनगर का क्या ध्वंस हुआ, मानो दक्षिण में हिन्दुओं का भाग्यभानु सदा के लिये अस्त हो गया।

सन् १५०० ईसवी में अली की मृत्यु हुई। इमारतों के बनवाने में इन्हें सदा उत्साह रहता था। इन्होंने जुमा मसजिद, ताज बावली, नगरकोट, नहर आदि अनेक चीजें बनवाई थीं। उनके राज्य के अन्तसमय बादशाह अकबर के भेजे हुए कई एक गुप्तचर बीजापुर गए थे, पर क्यों गए थे इसे किसीने भी न समझा। इन दूतों की ऐसी शनि की दृष्टि बीजापुर पर पड़ी कि अन्त उन्होंने उसे मटियामेट ही करके छोड़ा। संसार में कभी किसीका एक सा दिन न रहा है और न रहेगा।

कार्तिकप्रसाद।

महाराज माधवराव सेंधिया, ग्वालियरनरेश

पाठकगण! हमारा विचार था कि हम आपको मध्यभारत के देशी राज्यों के शिरोमणि महाराज सेंधियानरेश का कुछ जीवनवृत्तान्त सुनाकर उनके उत्तम गुणों तथा प्रजावत्सलता का नमूना दिखलाते। परन्तु उनकी जीवनी का सच्चा वृत्तान्त संग्रह करने में बहुत ही विलम्ब जान, और एक विदेशी विद्वान द्वारा उनके उत्तम गुणों का गान सुनकर इच्छा हुई कि आपको उसी विद्वान द्वारा लिखित महाराज की जीवनी का संक्षेप वृत्तान्त सुनावें, क्योंकि इस समय यदि

हम स्वतः उनके गुणों का गान करें तो लोग समझेंगे कि उन्हींके यत्न से लालित पालित होने के कारण अधिक प्रशंसा की गई है। दूसरे, महाराज ने अपने राज्य के सरकारी कार्यालयों में देवनागरी अक्षरों के प्रचार करने की आज्ञा प्रकाशित करके जो अक्षय पुण्य लाभ किया है, उसके विपरीत बहुत से विपक्षीजन यह कहने को प्रस्तुत हो जावेंगे कि नागरी के प्रेमी होने के कारण महाराज की जीवनी लिखते समय उनके गुणों का ही केवल गान किया है, क्योंकि मनुष्य में गुण और दोष दोनों ही मिश्रित रहते हैं। इस कारण इस समय यही उचित जान पड़ा कि हम महाराज की पूर्ण जीवनी किसी दूसरे समय आपकी भेंट करें। इस समय केवल महाराज का चित्र तथा विदेशी विद्वान श्रीमान मिस्टर आई० एन० मालकम साहब बहादुर, एम० पी०, लिखित उनका चरित्र, जो एक विलायती पत्र में प्रकाशित हुआ है, भेंट करते हैं।

"श्रीयुत मान्यवर कर्नल सर माधवराव साहब सेंधिया आलीजाह बहादुर राज्य ग्वालियर, मेम्बर खान्दान मरहटा सेंधिया, उन पांच देशी महाराजों में से हैं जिनको राज्याभिषेक के समय आने का निमन्त्रण दिया गया था। आप और निमन्त्रित राजाओं की नांई, इसके पहिले इतनी लम्बी यात्रा करके न तो कभी इङ्गलैण्ड पधारे थे, और न आपने कभी राजराजेश्वर के दर्शन (जिनके राज्य के साथ आपको पूर्ण भक्ति है) किए थे। ये प्रतिभाशाली महाराज, जो एक परिश्रमी, सहानुभूति-प्रकृति रखनेवाले, उच्चश्रेणी के मरहटा सरदार हैं, नाना प्रकार के उत्तम गुणों से भूषित हैं। हरएक मनुष्य और जाति के लोगों को, जिनको शीघ्र ही आप से काम पड़नेवाला है, और जिनकी अतिथि सेवा शीघ्र ही श्रीमान् को प्राप्त होगी, श्रीमान् अपने प्रेम और भक्ति द्वारा मोहित कर लेंगे।

"महाराजा सेंधियानरेश २६ वर्ष के युवा सरदार हैं। अनुमान ८ वर्ष के हुआ, जब युवावस्था होने पर आपको राज्य का पूरा भार सौंपा गया था। आपके पिता बृटिश सिंहासन के सदैव शुभचिंतक रहे। सन् १८५७ ई० के बलवे के समय जब उनकी सेना ने उनका साथ छोड़ दिया, और राजधानी पर अधिकार जमा लिया, उस समय आपने सरकार को, अपना जीवन तुच्छ समझ, ऐसी सहायता दी जिसको गवर्मेण्ट अब तक कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करती है, और जिस समय देशी सेना की नसों में युद्ध के लिये रक्त संचरित हो रहा था, उस समय ऐसी सरकार के पक्ष में रहना, जिस का बिजयी होना तुरन्त दृष्टिगोचर नहीं होता था, कोई सहज काम नहीं था।

"इन शुभचिन्तकता की आख्यायिकाओं में वर्तमान् महाराज साहब ने इस सावधानी के साथ शिक्षा पाई है कि जिसका आज यह मनोरंजक योग्य फल पैदा हुआ है कि आपको इससे बढ़कर और कोई अभिलाषा नहीं कि अपने पूज्य पिता के अनुकारी बनें और भारत सरकार और अपने सम्राट की प्रसन्नता प्राप्त कर सकें।

"भारतवर्ष के देशी अधिकारियों के विषय में उनके अभिमानी रत्नजटित आभूषण धारण करना और अनगिनत स्त्रियों के साथ भोग करना, पूर्वी स्तुति और अधिक विषय के आसक्त होना, लगभग अपढ़ होना, और इसी प्रकार के अन्य अवगुणों में पड़े रहना, इत्यादि ऐसे विचार विलायतवालों के हैं। इस कारण इन शंकाओं के निर्णयार्थ सेंधिया साहब की बाबत थोड़ी सी निज की जानकारी के अतिरिक्त इतना और कहना उचित होगा कि महाराज ऊपरवर्णित कुरीतियों से बिलकुल पवित्र हैं।

"जबसे आप राजगद्दी पर विराजे, तबसे आप को सदैव सर्वोच्च प्रवन्धकर्ता और सर्वोत्तम योधा होने में सफलता प्राप्त करने की आकांक्षा रहती है। वर्तमान अवस्था में राज्य के हर एक विभाग और मुहकमे के प्रवन्ध में आपको इतना अधिकार प्राप्त हो गया है कि छोटे से छोटे कार्य को जब तक

आप स्वयम् पूर्ण रूप से निरीक्षण न करलें, तब तक उसको राज्य में प्रचलित करने की आज्ञा कभी किसीको नहीं देते। इस अवस्था में वाइसराय के पीछे आपकी बुद्धिमत्ता बहुत ही आश्चर्यजनक हैं। आप श्रीमान् वाइसराय के बहुत ही बड़े प्रशंसक हैं। महाराज के राजकर्मचारी इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि जब से महाराज को पूर्ण अधिकार प्राप्त हुआ, तब से राज्य के प्रबन्ध में उत्तमरूप से प्रशंसायोग्य उन्नति हुई है।

"आप जिस समय दिन में राजनैतिक कर्तव्यों से अवकाश पाते हैं उस समय हाथ में छडी लेकर फ़ौज में जा पहुंचते हैं और स्वयम् कमाण्ड करने लगते हैं, तथा इस कार्य में कभी नागा नहीं होने देते। इस विद्या में भी आपने पूर्ण जानकारी प्राप्त की है और इसकी उत्तम रीति से प्रशंसा भी हुई है। ग्वालियर राज्य से बढ़कर इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स का रिसाला कदाचित् किसी ही स्थान में मिल सके। यह रिसाला आज्ञा पाने पर एक क्षण मात्र में जहां कहो वहां जाने को, और जिससे कहो उससे युद्ध करने को कटिबद्ध है। थोड़ा ही समय हुआ जब कि श्रीमान् वाइसराय को इन योग्य महाराज ने निमन्त्रित किया था। उस समय जो निम्नलिखित वाक्य श्रीमान् ने कहे थे, उनसे कितनी उच्च योग्यता और राजभक्ति टपकती है–

'दो समयों पर मैंने इस विषय में अपनी उत्तमता और अपना कर्तव्य समझा कि कुछ अपनी सेना देशान्तर, श्रीमती महारानी की सेना के साथ, युद्ध-क्षेत्र में भेजूं; परन्तु यह उत्तमता इस दुःख में सम्मिलित है कि मैं स्वयम् रणभूमि में उपस्थित न हो सका। इस बात के कहने की मुझे आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि मैं और मेरा कुल राज्य और राज सम्पत्ति श्रीमती की सेवा में, जहां कहीं और जिस समय आवश्यकता हो, उपस्थित है, और मेरा साहस उस समय प्रगट होगा जब मैं श्रीमती महारानी विक्टोरिया के शत्रुओं से स्वतः (यदि सम्भव हुआ तो) सबसे आगे बढ़कर कार्य करूं और सदैव प्रत्येक कार्य में श्रीमती की सेना के साथ प्रसन्नतापूर्वक कार्य करने को उद्यत रहूं।'

"इसके पश्चात् मुझे यह कहते हुए और भी अधिक हर्ष होता है कि इन वाक्यों के कहने के पश्चात् महाराज ने चीनदेश के युद्धस्थल, पेकिन में संयुक्त सेनाओं के साथ कार्य करने की प्रतिष्ठा प्राप्त की, और अपनी स्वतः सहायता के अतिरिक्त एक राजकीय सहायता, अर्थात् होस्पिटेल शिप, अपने निज व्यय से उत्तम प्रकार सजा कर हमारी पेकिनस्थ फ़ौज के सुखार्थ उपस्थित किया था।

"राजधानी ग्वालियर अपने स्वामी की शिल्प-विद्याप्रियता के बहुत से चिन्ह और प्रमाण दर्शित करती है, अर्थात् सिवाय विक्टोरिया कालिज के उत्तम और विशाल भवन के, जो श्रीमती महारानी विक्टोरिया के जुबिली महोत्सव के स्मरणार्थ तैयार हुआ था, वहां एक मिमोरियल अस्पताल भी है। इस अस्पताल के कमरे और उनके यन्त्र लन्दन के अस्पताल की नांई परिपूर्ण और सुसज्जित हैं, जहां साफ़ और सुथरी रोशनी और सब यथोचित सामान उपस्थित हैं*।

"देशी राज्यों में जेल का प्रबन्ध बहुधा घृणा-योग्य होता है। परन्तु महाराजा साहिब ने इसका भी एक उत्तम दृष्टान्त देकर यह दिखला दिया है कि जेल का प्रबन्ध यों होता है। कारागृह के चौक और शयनागार, तथा स्वच्छता को प्रबन्ध, और विशेषतः जेल के नियमों के बहुत ही उच्च और उत्तम होने का कारण यह है कि महाराजा साहिब का मस्तिष्क और हृदय राज्य की सेवा के लिये सदैव कार्य करते रहते हैं। कारागृह में जो कैदी हैं, वे पहिले या तो डाकू, लुटेरे या हत्यारे थे। जिस समय ये पकड़े गए, उस समय शिक्षा की गन्ध तक उनके कानों तक नहीं पहुंची थी। परन्तु उनकी

* मैं किसी दूसरे समय विक्टोरिया कालेज, मिमोरियल अस्पताल, जयेन्द्रभवन (महाराज के रहने का निवासस्थान), और क़िले के चित्र पाठकों को सरस्वती द्वारा भेंट करूंगा – लेखक।

यहां की शिक्षा दीक्षा ऐसी उपकारी हुई कि कारागृह के भयकारी स्थानों में वे उत्तम कारीगर और शिल्पज्ञ हो गए।

"इन लोगों के हाथ के बने हुए उत्तम उत्तम नकाशी तथा अन्य शिल्प के काम बाहर की वस्तुओं से दृढ़ता और उत्तमता में किसी प्रकार कम नहीं हैं।

"अब मैं ग्वालियर की सुन्दरता का कुछ वर्णन किया चाहता हूं। इस प्राचीन नगर का पुराना क़िला ३०० फ़ीट ऊंची चट्टान पर पृथ्वी को आंखें दिखा रहा है। इस गढ़ के कोट के भीतर देशी, विलायती, तथा अन्य अन्य अन्वेषीगणों के लिये, ऐतिहासिक रोचकता की सामग्री एकत्रित है और इस सामग्री के होने का कारण यही है कि अपने अपने समय में बहुत सी जाति की सेनाओं का इसपर अधिकार रहा है। अन्तिम अधिकारी बृटिश सेना थी, जिसने सन् १८८६ ईसवी में क़िले को खाली किया। जिन जिनका इस पर अधिकार रहा, वे सब संगमरमर और अन्य पत्थरों के ऊपर अपने अपने चिन्ह छोड़ गए हैं।

"यों थोड़े से वाक्य ग्वालियर राज्याधिकारी की राजसेवा और राजधानी की उत्तमता दिखाने को बहुत होंगे। परन्तु उनके निज जीवन में भी उनकी सहानुभूति और रसिकता के सब अंग्रेज प्रशंसक हैं, और इनकी गणना मानों अपने ही समाज में करते हैं।

"हे मृगयाहेरी पुरुषो! यदि तुम महाराजा साहिब की घुड़साल में जाकर देखोगे तो तुमको वहां उनके घोड़ों की प्रियता दिखाई पड़ेगी। यदि तुम सूअर के शिकार में उनके साथ जाओ तो तुम देखोगे कि वह, तुमसे बढ़ कर कैसे अच्छे शिकारी और उत्तम आरोही हैं।

"हे फ़ोटोग्राफ़रो! तनिक तुम राजभवन के शिखर पर से जाकर देखो, तो तुमको वहां से दिखाई देगा कि स्टुडियो और चित्र के कैसे कैसे कारखाने हैं, और वे कैसे कैसे कैमेरों, अंधेरे कमरों, प्लेटों और चित्र उतारने की भांति भांति की सामग्रियों से सुसज्जित हैं। हे इञ्जिनियरो वा अन्य वैज्ञानिको! तनिक उनके आश्चर्यजनक भवनों को, जिन्हें उन्होंने अपने निज विचारानुसार बनवाए हैं, और वहाँ छोटी पटरी की रेलवे के चित्रों और स्कीमों की व्यवस्था की है, जाकर देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि उन्होंने इस कार्य में भी कुशलता प्राप्त की है। वे स्वतः एञ्जिन चलाना जानते हैं। कौतुकसंग्रहालय में उन्होंने संसार के दुर्लभ पदार्थों के अतिरिक्त कैसे सुन्दर पशु पक्षियों के ढांचे, औषधियों से युक्त सन्दूकों में भर रक्खे हैं, जिन के देखने से जीवित जीवों का भ्रम होता है। यदि आप यह जानना चाहते हैं कि ये प्रतिभाशाली श्रीमान् अपने राज्य की भलाई और उत्तम स्थिति के कर्तव्यों पर कहां बैठ कर विचार करते हैं, तो कृपाकर थोड़ा कष्ट सहन करके उस पुस्तकालय में जाकर देखिए जो महाराजा साहिब के शकुन्तीमहल के एक कोने में है। उस पुस्तकालय को बाहर और भीतर से सम्पूर्ण राजभवनों से, जो निरा पूर्वी (रजवाड़ी) तरह का बना हुआ है, बिलकुल निराले ही ढङ्ग का पाएगा। वह अंग्रेज़ी पुस्तकालयों से बहुत मिलता जुलता है। वहां सिन्दूरवृक्ष की काली काली लकड़ी के चौखटों में शीशे जड़े हैं और विश्राम करने के लिये, अरुणचर्मजटित कुर्सियां सजी हैं, और घर में चारो ओर पुस्तकें चुनी हुई हैं। एक कोने में बन्दूकें रक्खी हुई हैं। कमरे के बीच में, जहां आप एक बड़ी मेज़ के पास बैठा करते हैं, आपके मित्रों और सलाहकारों के चित्र लगे हुए हैं। टेलीफोन और अन्य बिजली के सामान उनके हाथ के ही पास प्रस्तुत हैं। यह कमरा, जहां यह देशभक्त प्रभावशाली युवामहाराज रहते और कार्य करते हैं, बड़े राजसी ठाठ से सजा हुआ है। आप बड़े विद्वान, देश और राजभक्त और बृटिश सिंहासन के बहुत ही बड़े शुभचिन्तक हैं, जिस कारण से आप इङ्गलेण्ड में एक उत्तम अतिथि हैं और आपकी अपने निज देश में भी अनमोल गणना की जाती है।"

ठाकुर सूर्यकुमार वर्म्मा।

हिसाब समझनेवाले की भूल

[१]

[मोहनलाल और रमाकान्त]

मोहनलाल—(ठंढी सांस लेकर) हाय ! हम लोगों ने जितनी आशा और उद्यम किया था, अब सभीं वृथा हो गया।

रमाकान्त—क्या हुआ ?

मोहनलाल—'न जाने इस देश की क्या दशा होगी' यही सोचते सोचते रातभर नींद नहीं आती थी, और सुधार की चिन्ता ने व्यग्र कर रक्खा था। सोचते सोचते अन्त में यही एक उपाय सोचा था कि यदि स्वदेश के लिये शरीर का नाश भी हो जाय ते कोई हानि नहीं, और यह विचार कर मन को समझाता था कि क्या पहिले महात्मा लोग स्वदेश के लिये जीवन उत्सर्ग नहीं करते थे? इत्यादि कल्पनाओं में गोते खाते खाते कभी सिर में दर्द होने लगता, कभी बुखार आ जाता, तौभी इस अलौकिक देश के उपकार करनेवाले विचारों को न छोड़ता। क्या ये सब उद्योग और परिश्रम अपने लिये करता था? कदापि नहीं। जो कुछ करता था स्वदेश और युवाओं की मंगलकामना के लिये करता था। कहां गईं वे सब आशाएं! हाय! अब मैं किसके लिये अपने को सोचसागर में मग्न करूंगा ?

रमाकान्त—तुम्हारी तो बातही समझ में नहीं आती, और न यह जान पड़ता है कि तुम्हारे घबड़ाने का इसमें कारण ही क्या है ?

मोहनलाल—मैं आज किस लिये घबड़ा रहा हूं क्या यह तुम नहीं जानते? यदि तुम इन सब बातों को विचारते और जानते तो आज इस दशा ही को क्यों प्राप्त होते? पृथिवी पर क्या हो रहा है और भविष्यत में क्या होनेवाला है, भला इस पर भी कभी कुछ ध्यान दिया? हाय! हमारे देश की अवस्था कैसी मन्द हो गई है कि ईश्वर की कृपा से जिसे दोनों समय खाने को मिल जाता है, वह अपने को परम सुखिया और संसार की सब झंझटों से छुटकारा पाया हुआ समझ कर ईश्वर को धन्यवाद देने लगता है, चाहे देश के दूसरे भाई बन्धु रहें वा न रहें इसकी उसे चिन्ता नहीं रहती। बस "आप भला तो जग भला"। अभी देखिए वैज्ञानिकों के एकमात्र आधार मिष्टर टामस साहब ने गणित से एक ऐसी बात निश्चित की है कि उसे हमलोग कभी ध्यान में भी नहीं ला सकते थे। उन्होंने एक ऐसी बात को निश्चय कर दिया है कि जिसके कारण संसार का वा भूमण्डल का बड़ा भारी उपकार हुआ है।

रमाकान्त—'वह क्या ?'

मोहनलाल—यह जो पृथिवी चल रही है और हमलोग बचे हुए हैं, यह किसके बल से? जितने मनुष्य, जीव, जन्तु, कीट और पतंगादि सब सूर्य की रश्मियों (किरणों) ही से प्रतिपालित होते हैं। जो रश्मी सूर्य से इस पृथिवी तक आती हैं, वह पुनः सूर्य के अन्दर प्रविष्ट नहीं हो सकती, जिस से सूर्य की गरमी दिन दिन कम होती जाती है, और न इसके संचय करने का ही कोई उपाय है। मैं एक मोटी बात आपसे कहता हूं कि जहां खरच ही खरच है, जमा के स्थान में केवल शून्य है, वह खरच कब तक निभ सकेगा? यही बात सूर्य के लिये भी है। सूर्य चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, एक न एक दिन अवश्यमेव उसकी पूंजी (उत्ताप) चुक जायगी, सम्पूर्ण भूमण्डल कर्त्तव्यशून्य, जीवशून्य, प्राणिशून्य, यहां तक की सर्वशून्य हो जायगा। इसपर मिष्टर टामस साहब ने निश्चय किया है कि "पांच करोड़ वर्ष में सूर्य की दाहक शक्ति ठंढी हो जायगी"।

रमाकान्त—जब पृथिवी ही कुछ दिन पीछे जीवरहित हो जायगी, तब तुम लोग किस लिये नागरीप्रचार का आन्दोलन कर रहे हो, और किसके

लिये साल के साल नेशनल कांग्रेस इत्यादि, और क्यों व्यर्थ की टांय टांय करने के लिये बड़े बड़े समाचारपत्र तथा मासिकपत्र निकाल कर साल के साल घाट्टा सहते हो ? और हाय देश, हाय देश, चिल्लाते चिल्लाते सूर्य की दाहक शक्ति समाप्त होने के पहिले ही मरे जाते हो ?

मोहनलाल—मैंने यही तो सोच के अब सब बातों में उदासीनता ग्रहण कर ली है। सब काम वृथा है, कारण कि पांच करोड़ वर्ष के दिन का ?

रमाकान्त—(मुसकुराकर) तुम क्या कह रहे हो ? पांच करोड़ वर्ष बहुत होता है।

मोहनलाल—हाय ! तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गया है, जो तुम बेसमझी बातों में इतना झगड़ते हो। अरे ! पृथिवी का जीवनकाल पांच करोड़ वर्ष गिनने से कुछ नहीं है। जब स्वदेशहित की चेष्टा की जाती है, वह क्या दो चार वर्ष के लिये की जाती है ? या क्या अपने सुख के लिये, कि जिसमें उसका दस, पांच वर्ष में सुख भोग लिया जाय और नाम कर उसको मिट्टी में मिला दिया। इस लिये देश का उपकार करना नहीं विचारा जाता, वरन जिस कार्य के लिये उद्योग करें, उसका फल युगयुगान्तर बना रहे। जब यह बात होनी ही नहीं है, और पृथिवी बहुत जल्दी नाश हो जायगी, तब व्यर्थ का उद्योग क्यों करें ?

रमाकान्त—फिर अब क्या करोगे ?

मोहनलाल—अब करेंगे क्या ? चुप चाप बैठे बैठे आयु पूरी होने में दिन गिनते रहेंगे और आयु पूरी होने पर स्वर्ग का सुख लूटेंगे।

रमाकान्त—मुझे तो पांच करोड़ वर्ष जीना नहीं है कि जिसके लिये फिकर करूं।

मोहनलाल—तुम्हें इतनी भी समझ नहीं है कि मेरे कहने का मतलब यही है अथवा कुछ और है। जब यह मालूम हैं कि हम लोग अब कुछ नहीं कर सकेंगे, तब दिन गिनने ही से क्या लाभ ? और तब संसारिक झंझटों में पड़ना व्यर्थ है। उद्देश्य होने ही से काम किए जाते हैं, बिना उद्देश्य के कोई भी काम नहीं होता। मान लिया जाय कि अभी पांच सौ वर्ष और जीएंगे, इससे क्या मिलना है ? बुते हुए दीपक के समान जब एक न एक दिन पृथ्वी का आलोक और जीवन बुत जायगा, तब हम लोग कहां रहेंगे, और तुम्हारा देशही कहां रहेगा ?

रमाकान्त—ठीक, ठीक, मैं समझ गया। अधिक आपको समझाने की जरूरत नहीं है।

[२]

मोहनलाल का घर

मोहनलाल की स्त्री—तुम जो दिन रात बैठे रहते हो, भला इस ढंग से मैं तुम्हे कै दिन खिला सकूंगी ? लड़की सयानी हुई जा रही है उसका भी तुम्हें कुछ ध्यान नहीं। चार दिन में उसको व्याहना होगा, जिसका करना जरूरी है, जिसके न करने से लोक और परलोक दोनों बिगड़ता है।

मोहनलाल—अभी भी तुम्हें लोक की फिकर पड़ी हुई है। ठीक है "अंधे आगे रोए और अपना दीदा खोए"। मैंने कितनी ही बार तुम्हें समझाया कि मेरे सामने संसारिक झगड़ों का रोना न रोया करो। किन्तु तुम ऐसी मूर्ख हो कि जरा भी तुम मेरी बात पर ध्यान नहीं देती। अरे दो दिन पीछे पृथ्वी का भी कहीं पता न लगेगा, तुम्हें क्या यह मालूम नहीं है। तुम्हें सब बात के समझने की ईश्वर ने बुद्धि दी है, केवल मेरी ही बातों के समझने की बुद्धि छीन ली है। क्या तुम यह नहीं जानती कि मैं पहिले स्वदेशहित के कामों के करने के लिये कैसे कैसे विचार करता था, कैसी कैसी बाँधन बाँधता था, किन्तु आज कल कभी कुछ भी विचार नहीं करती।

मोहन की स्त्री—जो कुछ करते हो अच्छा ही करते हो। जितने संसार में मनुष्य हैं, किसीके भी

यह ध्यान में नहीं आता कि पृथ्वी आज ही ठंढी होकर जीवशून्य हो जायगी। मेरी समझ में सिवाय तुम्हारे और किसीको समय नहीं है, क्योंकि सभी लोग अपनी चार दिन की जीवन-यात्रा पूरी करने के लिये कमाने की चिन्ता करते हैं, और लड़की लड़कों का व्याह दान करते हैं; किन्तु तुम्हारा विचार सबसे अच्छा है कि मैं तुम्हारे खाने पीने का बन्दोबस्त करती रहूं और तुम मूर्त्तिमान आलस्य का रूप निहारते रहो।

मोहनलाल- किसने तुमसे कहा है कि तुम मेरे लिये खाने पीने की फ़िकर करो! बस चुप चाप बैठी रहो। दो चार दिन पीछे आपही सबके दिन पूरे हो जायंगे, तब न खाना पीना ही पड़ेगा और न लड़की लड़कों के व्याहदान करने की फ़िकर करनी पड़ेगी। जो कुछ भी आशा होती तो क्या मैं जड़ की तरह बैठा रहता? क्या मेरा उत्साह कम हो गया है वा मेरी क्षमता कम हो गई है? कुछ भी कम नहीं हुआ है। इच्छा करूं तो क्या नहीं कर सकता? जो मनुष्य स्वदेश के लिये शरीर तक दे देने को तय्यार था, वह सांसारिक छोटी छोटी बातों को क्या समझता है। तुम्हीं विचार कर देखो कि जब कुछ दिनों में सब प्राणियों का कहीं खोजे भी पता नहीं लगेगा, सम्पूर्ण भूमण्डल जीवरहित हो जायगा, ऐसी अवस्था में चार दिन के सुख के लिये शरीर को कष्ट देना निरी मूर्खता है। इससे ज्याद: मैं तुम्हारे संग सिरखप्पन नहीं कर सकता।

मोहन-स्त्री—भला मैं अनपढ़ी तुम्हारी बातों को क्या समझूंगी कि जब पढ़े लिखे लोगों को भी तुम्हारी बातों के आगे सिर झुकाना पड़ता है। अच्छा, अब तुम्हें मेरे संग "सिर खप्पन" करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। जीवशून्या पृथ्वी कब होगी इसका तुम आसरा देखो, और मैं अपने पिता के घर जाने के लिये गाड़ी मंगाती हूं, और अब वहीं जाकर बचे हुए जीने के दिन को बिताऊंगी।

मोहनलाल—चाहे तुम बाप के यहां रहो चाहे मेरे यहां रहो, जब बखत आजायगा, कहीं रहो, बच नहीं सकती।

मोहन की स्त्री—अच्छा, जो होगा देखा जायगा। मेरा अपराध क्षमा हो, अब मैं जाती हूं।

[३]

(कई एक नव युवक लोग बैठे है)
(मोहनलाल का प्रवेश)

मोहनलाल—कहो भाईयो, क्या कर रहे हो?

पहिला युवक - हम लोगों का विचार कुछ रुजगार करने का है, उसीके सम्बन्ध की बातें हो रहीं हैं।

मोहनलाल—ऐसी बातों के करने का परिणाम ही क्या है?

दूसरा युवक—इन बातों को करके यही स्थिर करेंगे कि कौन सा काम करना चाहिये।

मोहनलाल—क्या आप लोगों ने मिष्टर टामस साहब की गणित का परिणाम नहीं पढ़ा है?

प्रथम युवक—पढ़ा है।

मोहनलाल—तब क्यों जान कर यह व्यर्थ चेष्टा करते हो?

तीसरा युवक—यह व्यर्थ किस लिये है?

मोहनलाल—मैंने देशोन्नति करने के लिये, देशहित साधन के लिये, बहुत कुछ विचारा था, इन विचारों में कभी स्वार्थता को फटकने नहीं दिया था, इसीलिे मेरे विचार कभी वृथा होनेवाले नहीं थे। किन्तु अब उन सब सोच विचारों के करने का समय नहीं रहा, क्योंकि दो दिन पीछे सम्पूर्ण पृथ्वी जीवरहित हो जायगी। इस लिये व्यर्थ की झंझटों में अपनेको फसाना निरी मूर्खता ही है। यदि आप लोगों को कुछ भी समझ होती तो आप लोग भी मेरी ही तरह "सब तज हर भज" के अनुगामी हो जाते।

पहिला युवक—मेरी ईश्वर से बार बार यही प्रर्थना है कि वह आपको ऐसी तीक्ष्णबुद्धि कदापि भूले से भी न दे। यदि कल महाप्रलय होने की खबर हो, और आज रात में भी किसी तरह की उन्नति कर सकते होगें, तो उसके प्राप्त करने का उद्योग नहीं छोड़ेंगे। आपकी महान बुद्धि आपके ही पास रहे।

मोहनलाल—आपलोगों को समझाने का उद्योग करना वृथा है, क्योंकि आंख के रहते भी हृदय के अंधे हैं।

[४]

(रमाकान्त के घर पर मोहनलाल का प्रवेश)

मोहनलाल—अरे भाई रमाकान्त! मैं इस समय बड़ी विपद में हूं, मुझे इस समय कुछ भी नहीं सूझता, किस तरह इस विपद से छुटकारा पाऊंगा।

रमाकान्त—कहो इस समय कौनसी विपद की चिन्ता ने इतना व्यग्र बना दिया। क्या साहब बहादुर की गिनती में भूल निकली है कि अब पांच करोड़ वर्ष भी पृथ्वी की आयु नहीं है।

मोहनलाल—यह सब कुछ नहीं, यह विपद मेरी ही है। आज सबेरे से भूखा हूं। अन्न का एक दाना भी अभी तक मुंह में नहीं गया, भूख के मारे दम निकला जाता है।

रमाकान्त—(आश्चर्य से) क्या घर में कुछ खाने को नहीं हैं?

मोहनलाल—न तो घर में कुछ खाने को है और न घरवाली ही है। वह भी मुझ से रुष्ट होकर अपने बाप के यहां चली गई है।

रमाकान्त—वह बाप के यहां क्यों गई?

मोहनलाल—मैं साहब बहादुर की गणित समझाता था; किन्तु स्त्रियों का स्वभाव बड़ा विचित्र होता है, वह इसको जरा भी नहीं समझी, उलटा मुझ से रुष्ट होकर बाप के यहां चली गई; अब मेरी बिपता का कुछ पूछना क्या है?

रमाकान्त—तुम्हारा यह बड़ा भारी अन्याय हुआ है। क्या इस महीने में महीना नहीं मिला?

मोहनलाल—इस महीने से नौकरी छोड़ दी है।

रमाकान्त—यह क्यों?

मोहनलाल—जब साहब बहादुर की गणित एक दिन सत्य ही होगी और जीव का रहना असम्भव ही है, तब नौकरी करने का फल ही क्या है?

रमाकान्त—तुम्हारी विवेचना, तुम्हारे सिद्धान्त, सभी ठीक हैं, केवल एक बात में तुमने भूल की; अर्थात्, जैसे नौकरी छोड़ कर सब चेष्टाओं को त्याग दिया है, वैसे ही खाने पीने की भी चिन्ता को त्याग देना चाहिए।

मोहनलाल—बिना भोजन किए तो एक दिन भी नहीं रह सकता।

रमाकान्त—क्यों? जहां सब काम छोड़ दिए, वहां खाना भी छोड़ दो, क्योंकि चार दिन में पृथ्वी का अन्त है ही है, दो दिन पहिले ही चल बसोगे तो कोई हानि है?

मोहनलाल—हे मित्र! तुम्हे ऐसा कहना उचित नहीं है।

रमाकान्त—ठीक है, तुम निकम्मे बन कर, घर वालों को भूखे रख कर बैठे रहो और मैं तुम्हें भोजन कराता रहूं! ऐसा ही करने से मेरी मित्रता का बर्ताव पूरा समझा जायगा। मुझको न पांच करोड़ वर्ष जीना है, और न मुझ में इतनी सामर्थ्य है कि मैं तुम्हारे लिये पांच करोड़ वर्ष तक खाने का प्रवन्ध कर दूं। कृपा करके अपने घर का रस्ता पकड़ो, मुझको आपकी ऐसी मित्रता स्वीकार नहीं हैं।

सिद्धेश्वर शर्मा।

नागरी अक्षर और हिन्दी भाषा*

आठवें इम्पीरियल टेबुल में पढ़े लिखे आदमी पांच भागों में बांटे गए हैं। यह भाग (१) केवल उर्दू जाननेवालों, (२) केवल हिन्दी जाननेवालों, (३) और (४) हिन्दी और उर्दू दोनों जाननेवालों (जो लोग हिन्दी ज्यादः जानते हैं उनका उर्दू ज्यादः जाननेवालों से भेद किया गया है) और दूसरी भाषा जाननेवालों के हिसाब से किया गया है। यहां पर यह कह देना चाहिये कि यद्यपि यह भेद भाषा का किया गया है, पर असिल में यह केवल अक्षरों ही का भेद है; अर्थात् आठवें टेबुल में जो 'हिन्दी' और 'उर्दू' शब्द आए हैं, उन से केवल 'फ़ारसी अक्षर' और 'नागरी वा उससे मिलते हुए अक्षर' ही समझना चाहिए। आगे के अध्याय में दिखलाया जायगा कि उर्दू और गद्य की हिन्दी एक ही भाषा है, और इन दोनों के व्याकरण भी एक ही हैं, पर उनमें शब्दों का प्रयोग करना लेखक की रुचि पर निर्भर है। पढ़े लिखे लोगों का उनके अक्षर जानने के हिसाब से जो भाग किया गया है, वह ध्यान देने लायक है। जिस समय इस प्रान्त में सरकारी राज्य फैला, उस समय यहां की कचहरियों में फ़ारसी भाषा और अक्षर जारी थे। यह बात सन् १८३७ ईस्वी तक रही और उस सन् में फ़ारसी भाषा की जगह यहां की भाषा कर दी गई, पर अक्षर ज्यों के त्यों रक्खे गए। उस समय अगर कचहरी में कभी नागरी वा उससे मिलते हुए अक्षरों में लिखे हुए किसी काग़ज़ के पेश करने की बारी आती, तो उसके साथ ही फ़ारसी अक्षरों में भी उसकी नकल देनी पड़ती थी। १९०० ईस्वी में गवर्मेण्ट ने एक आज्ञा जारी की जिसमें कचहरियों और सरकारी कर्मचारियों के पास नागरी अक्षरों में भी अर्जी आदि देने की आज्ञा दी गई, और यह भी आज्ञा हुई कि जो सूचनाएं प्रजा को दी जांय वे फ़ारसी और नागरी दोनों ही अक्षरों में हों। उस आज्ञा में यह दिखलाया गया था कि यद्यपि केवल नागरी वा उससे मिलते हुए अक्षर जाननेवालों और केवल फ़ारसी अक्षर जाननेवालों की संख्याओं का ठीक ठीक पता नहीं था, पर सन् १८९१ ईस्वी की मनुष्यगणना से विदित हुआ था कि जहां केवल ५४००० लेखकों ने फ़ारसी अक्षरों में काम किया, वहां १२०००० लेखकों ने नागरी वा कैथी में (जो कि नागरी का एक बहुत मिलता हुआ रूप है) किया। जब सर्वसाधारण आज्ञाओं पर विचार कर रही थी तो इसके विरोधियों ने कहा कि इन अक्षरों का मनुष्यगणना के लेखकों में जो नम्बर पाया गया है, वह सर्वसाधारण के नम्बर का ठीक अनुमान नहीं है। पर इस बेर की मनुष्यगणना से विदित होता है कि यद्यपि मनुष्यगणना के लेखकों के नम्बर में और सर्वसाधारण में हिन्दी उर्दू जाननेवालों के ठीक नम्बर में फरक है, पर वह फरक विरोधियों के और भी विपक्ष में है। क्योंकि लेखकों में तो नागरी वा कैथी अक्षर लिखनेवाले, फ़ारसी अक्षर लिखनेवालों के केवल ढाई गुने ही थे। पर असिल में जहां १०१६६९ आदमी नागरी वा कैथी जाननेवाले हैं, वहां केवल २५९०४३ ही मनुष्य फ़ारसी अक्षर जाननेवाले हैं, अर्थात् नागरी वा कैथी जाननेवाले चौगुने हैं। जो लोग इन दोनों अक्षरों को जानते हैं, उनमें से ६३३२४ तो नागरी वा कैथी से फ़ारसी अक्षर अच्छी तरह जानते हैं, और ६५६७९ फ़ारसी की अपेक्षा नागरी वा कैथी ही अधिक जानते हैं। इस सम्बन्ध में अलीगढ़ ज़िले का हाल लिखा जा सकता है। सन् १८९१ ईस्वी की मनुष्यगणना में जिस जिले में जिन अक्षरों में जितने फार्म भरे गए थे, उसी अन्दाज से इस बेर भी हर जिले में नागरी और फ़ारसी अक्षरों के फार्म भेजे गए थे। इस हिसाब से अलीगढ़ जिले के लिये जो अन्दाज किया गया था वह बिलकुल ही झूठ निकला। इसका कारण यह है

* संयुक्त प्रदेश के सेंसस सुपरिनटेण्डेण्ट ने अपनी रिपोर्ट में नागरी अक्षर और हिन्दी भाषा के विषय में जो कुछ लिखा है यह उसका अनुवाद है।

कि सन् १८९१ की मनुष्यगणना में ज्यादः करके पटवारी लोग काम करते थे और ये लोग उस जिले में अक्सर फ़ारसी अक्षर ही लिखते हैं। पर इस बेर ये बन्दोबस्त के काम में लगे रहने के कारण, मनुष्यगणना का काम नहीं कर सके। आठवें टेबुल से जान पड़ेगा कि इस जिले में जहां ६०२२ आदमी फ़ारसी अक्षर लिख पढ़ सकते हैं, वहां ५२८७३ आदमी नागरी अक्षर लिख पढ़ सकते हैं और इस लिये वहां बहुत से नागरी फार्म और भेजने पड़े। इस रिपोर्ट में नागरी और उसके बिगड़े हुए रूपों में भेद करने का उद्योग नहीं किया गया है, क्योंकि किसी एक ज़िले में जो कैथी लिखी जाती है, उससे दूसरे ज़िले की कैथी में बहुत फ़रक पाया जाता है। डांकखाने में भिन्न भिन्न तरह के अक्षरों की प्रतिलिपि की एक पुस्तक है, जिसमें इस प्रान्त की कैथी के ग्यारह नमूने हैं। यह पुस्तक एक पढ़े लिखे हिन्दू को दिखलाई गई। वह नागरी और कैथी के भी उस नमूने को तो सहज ही में पढ़ सका जो उसके ज़िले में लिखा जाता था और कैथी के एक दूसरे नमूने को भी, जो कि एक पास के ज़िले में लिखा जाता था, कठिनाई से पढ़ सका, लेकिन बाकी नमूनों को नहीं पढ़ सका। लखनऊ के दफ़्तर में आस पास से आए हुए इन्हीं तरह तरह के कैथी अक्षरों में लिखे हुए फ़ार्मों के पढ़ने में बड़ी ही दिक्कत हुई, और कानपुर के दफ़्तर में अजमेर-मेरवाड़ा के फ़ार्म को भाषा और जन्मस्थान के लिये फिर से लिखना पड़ा, क्योंकि 'मेरवाड़ा' 'मेवाड़' और 'मारवाड़' शब्दों में बड़ा ही गड़बड था। महाजनी अक्षरों में और भी ज्यादः कठिनाई है, क्योंकि उनमें मात्रा प्रायः बिलकुल ही छोड़ दी जाती है। इस अक्षर में लिखी हुई एक चिट्ठी की बात प्रसिद्ध है, जिससे बड़ी ही गड़बड़ मची थी। एक महाजन अपने घर से दूसरे शहर की अपनी कोठी में गया। उसके गुमाश्तों ने उसके घर समाचार लिखा कि "लालाजी अजमेर गए हैं, बड़ी बही भेज दो"। परन्तु वह पत्र यों पढ़ा गया कि "लालाजी आज मर गए हैं बड़ी बहू भेज दो"। अस्तु, इतने तरह के जुदे जुदे अक्षर होने के कारण यह बात आवश्यक हुई कि इनमें से कोई एक प्रधान चुन लिया जाय, और गवर्मेण्ट ने बहुत दिनों से इसके लिये देवनागरी अक्षर चुने हैं और गांव के कागज पत्रों में (जो कि इस तरह के मुख्य सरकारी कागज हैं जिनमें फ़ारसी अक्षर नहीं व्यवहार किए जाते) सब तरह के कैथी अक्षर लिखने की मनाही करदी है। सन् १८८२ ईस्वी के एजुकेशन कमिशन ने यह दिखलाया था कि इस आज्ञा का एक फल यह हुआ कि अवध की पाठशालों को (जिनमें नागरी के बिगड़े हुए रूप पढ़ाए जाते थे) सरकारी प्राइमरी स्कूलों की अपेक्षा बड़ी हानि पहुंची। पर इस समय तो नागरी पढ़ लेने का ज्ञान प्रायः उन लोगों में भी प्रचलित हो गया है जो लोग कि लिखने में नागरी के बिगड़े हुए रूप काम में लाते हैं।

मनुष्यगणना का तो केवल लिखने पढ़ने की योग्यता ही से सम्बन्ध है। शिक्षा का मुक़ाबला करने के लिये शिक्षाविभाग के उस हिसाब पर विचार करना चाहिए जो स्कूलों के लोअर प्राइमरी स्टेज से सम्बन्ध रखता है। इस दर्जे के विद्यार्थियों की संख्या सन् १८९०-९१ में १४६०७८ थी, पर सन् १९००-०१ में २५७१४४ हो गई है। इनमें से अधिकांश विद्यार्थी उन स्कूलों में हैं जो Local Funds से चलते हैं। सन् १८९०-९१ में ऐसे स्कूलों में ११८१४० विद्यार्थी थे और सन् १९००-१९०१ में १७४४८३। प्राइमरी स्कूलों में Local Funds का जो व्यय होता है वह दस वर्षों में ५४७१७२ रु० से बढ़ कर ६१९५४८ रु० हो गया है। परन्तु सन् १८९५ के अन्त में एक नई बात हुई, जिसका प्राइमरी शिक्षा पर बड़ा ही असर हुआ और जो बढ़ता ही जायगा। उस समय के पहिले गांवों के बहुत से छोटे छोटे स्कूलों को सर्कार नहीं मानती थी और न उन्हें कुछ सहायता देती थी। पर अब उन्हें

डिस्ट्रिक् बोर्ड के ज़रिए से धन की कुछ सहायता मिलने लगी। इसका फल यह हुआ कि प्राइमरी एडेड स्कूलों की हाजरी बहुत ही बढ़ गई। अर्थात् सन् १८९०-९१ में ३१९९१ थी और १९००-०१ में ६२८१० हो गई। मैं इस बात का कोई कारण बतलाने में असमर्थ हूँ कि हर एक जिले के लिखे पढ़े लोगों का संख्या में इतना फ़रक क्यों है। यदि इसका कारण यह बतलाया जाय कि जिस जिले में लोग शिक्षा का ज्यादः मान करते हैं, वहां ज्यादः शिक्षा है, तो यह भी नहीं हो सकता; क्योंकि इससे शिक्षा की इच्छा में क्यों भेद होना चाहिए। यहां पर यह भी कह देना चाहिए कि जहां लिखे पढ़े आदमियों की संख्या सब से ज्यादः है, वहां नागरी वा उसका कोई बिगड़ा हुआ रूप ही ज्यादः काम में आता है। केवल रुहेलखण्ड ही एक ऐसी कमिश्नरी है जहां केवल फ़ारसी अक्षर जाननेवाले नागरी जाननेवालों से अधिक हैं, पर वहां लिखे पढ़े मनुष्यों की संख्या दूसरी कमिश्नरियों से कम है। इसका केवल यही सारांश निकाला जा सकता है कि फारसी अक्षरों से नागरी सहज में सीखी जा सकती है। आठवें टेबुल से साफ़ जान पड़ता है कि हिन्दू लोग नागरी पढ़ना अच्छा समझते हैं और मुसलमान लोग फ़ारसी पढ़ना। पर कठिनाई तो यह बतलाने में पड़ती है कि रुहेलखण्ड कमिश्नरी में, जहां पर फारसी अक्षर और नागरी अक्षर जाननेवाले हिन्दुओं की संख्या दूसरे ज़िलों की अपेक्षा बराबरी पर अधिक पहुंचती है, वहां नागरी का इतना कम प्रचार क्यों है। नागरी सीखने के लिये जो सुगमताएं हैं, वे तो सम्भवतः प्रान्तों के सबही हिस्सों में बराबर हैं, और कमाऊं डिवीज़न को छोड़ कर और सब ज़िलों की कचहरियों में अक्षरों के प्रचलित होने में भी कोई भेद नहीं है जिस हम इसका कारण बतला सकें। यहां पर यह भी कह देना चाहिए कि खाली नागरी ही जाननेवालों में फ़ारसी जाननेवालों से प्रायः कम योग्यता पाई जाती है। मनुष्य गणना के दफ़्तरों में यह देखा गया है कि, साधारण प्रजा में से वे गणना करनेवाले जिनके फ़ार्म फ़ारसी अक्षरों में भरे गए थे, वे नागरीवालों से अच्छी तरह भरे गए थे। दूसरी बात ध्यान देने लायक यह है कि मनुष्यगणना के हिसाब के अनुसार पढ़े लिखे मनुष्यों का जो विभाग किया गया है, वह शिक्षाविभाग के हिसाब से बिलकुल उलटा है। कमाऊं में मनुष्यगणना और शिक्षा-विभाग दोनोंही की संख्या से शिक्षा की अधिकता प्रगट होती है। पर मेरठ और रुहेलखण्ड कमिश्नरियों में लिखे पढ़े लोगों की संख्या सबसे कम है, पर फिर भी उनमें स्कूल जानेवाले बालकों की संख्या सबसे अधिक है। इससे यह विदित होता है कि बुंदेलखण्ड तथा इन प्रान्तों के पूरब में पश्चिम की अपेक्षा प्रारम्भिक शिक्षा का अधिक प्रचार है। पहाड़ी ज़िलों में थोड़े प्राइवेट स्कूल हैं, पर सरकारी स्कूलों में शिक्षा की बड़ी जरूरत है। पढ़े लिखे हिन्दुस्तानियों के विषय में एक बात ऐसी है जिससे अङ्गरेज़ों को सबसे ज्यादः आश्चर्य होता है। वह यह कि वे लोग बहुत कम पढ़े हुए जान पड़ते हैं। पुस्तकों के स्वत्व के लिये जो रजिस्टरी की गई है, उससे जान पड़ता है कि इस देश में स्कूल की पुस्तकों और कुञ्जियों को छोड़ कर दो तरह की पुस्तकों, अर्थात् धर्म्मसम्बन्धी (पद्य की), पुस्तकों और उपन्यासों का ही सबसे ज्यादः प्रचार है। केवल नागरी ही जाननेवालों में इनके अधिक प्रचार का कारण भी है। वह यह कि आजकल नागरी की पुस्तकें बहुधा ऐसी बनावटी भाषा में लिखी जाती हैं कि वे साधारण आदमी की समझ में नहीं आतीं, और जो ज्यादः लोकप्रिय अच्छे काव्य हैं, वे प्रायः या तो प्राचीन भाषा में हैं, या भिन्न भिन्न बोलियों में लिखे हुए हैं, जो कि लोकप्रिय होने पर भी जल्दी समझ में नहीं आते। इसलिये बहुत करके हिन्दुस्तानी लोग चिट्ठीपत्री और हिसाब किताब लिख पढ़ लेने ही के लिये पढ़ना सीखते हैं, और उनका उद्देश्य

किताब पढ़ने का नहीं होता। शिक्षाविभाग के कर्मचारी लोग भी अङ्गरेज़ी पढ़नेवाले विद्यार्थियों की यही शिकायत करते हैं। इन विद्यार्थियों में से बहुत से तो कोई गलत या सही तार लिख लेने के लायक होते ही स्कूल से उठ जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इन प्रान्तों में इतनी कम शिक्षा होने का एक खास कारण यह है कि यहां के लोगों में पढ़ने की आदत का अभाव है, और जो लोग केवल नागरी जानते हैं, उनमें इस आदत के पड़ने में लिखने का एक बनावटी ढंग बड़ी बाधा डालता है। यह अभाव ज्याद: पढ़े लिखे हुए लोगों में भी, जो कि बहुतायत से नीचे दरजों की सरकारी नौकरी में हैं, पाया जाता है। भाषा में खास करके इतिहास, जीवनचरित्र, यात्रा और विज्ञान की पुस्तकों का बड़ा अभाव है और इसी प्रकार के दूसरे विषयों की भी पुस्तकें जो कि उन्नीसवीं शताब्दी के बहुत से योरोपियन साहित्य में वर्तमान हैं, इन प्रान्तों में नहीं पाई जातीं। डाक्टर ग्रियर्सन ने अपने 'वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ़ हिन्दुस्तान' नाम की पुस्तक में खेद के साथ दिखलाया है कि इस देश में केवल एक ही समालोचक, अर्थात् बाबू हरिश्चन्द्र, हुए। और यहां पर यह कह देना भी उचित होगा कि उनकी बहुतसी पुस्तकों में संस्कृत के कोष की भरमार पाई जाती है। मेरी समझ में विद्या के प्रचार और उसकी अधिकता दोनों ही में उन्नति करने के लिये तो अच्छे और लोकप्रिय ग्रन्थों का बनाना ही मुख्य है। एक दूसरी बात भी विद्या की उन्नति में बाधा डालती है। आठवें अध्याय में, जिसमें भिन्न भिन्न जातियों का वर्णन है, जातियों के विभाग दिए हैं। नवें और दसवें विभाग में ५५ फ़ी सैकड़ा ऐसे लोग हैं जिनके छूने में भी पाप समझा जाता है और इसीलिये इन जातियों के लड़के बहुत से स्कूलों में भरती नहीं किए जाते। दसवें विभाग में, जिनकी संख्या फ़ी सैकड़ा ५ है, ऐसी जातियां हैं जिनके विषय में भी विरोध हो सकता है। आठवें और नवें विभाग में, जिनकी संख्या ४१ फ़ी सैकड़ा है, काश्तकार, कारीगर, आदि जातियां हैं, जिनमें पढ़ना लिखना बेकाम समझा जाता है। अब केवल ३० फ़ी सैकड़ा ऐसे लोग बच गए जिनमें शिक्षा की कोई बाधा नहीं है और जिनमें बिना कठिनाई के इसका प्रचार हो सकता है। सन् १९००—१९०१ की शिक्षाविभाग की रिपोर्ट से जान पड़ता है कि स्कूल जाने की उमरवाले लड़कों में से ११ फ़ी सैकड़ा स्कूलों में पढ़ते थे। इस लिये यदि शिक्षा के विचार से इन प्रान्तों की उन्नति होनी जरूरी है तो साधारण लोगों की उपेक्षा को दूर करने और नीच जातियों की शिक्षा में सुबीता होने की आवश्यकता है। स्त्रीशिक्षा में दो बाधाएं हैं। पहिली तो यह कि अच्छी पढ़ानेवाली नहीं मिलतीं, क्योंकि यह समझा जाता है कि पढ़ाने का काम लज्जावती स्त्रियां नहीं कर सकतीं, और दूसरे यह कि छोटी छोटी लड़कियां यद्यपि लड़कियों के स्कूलों में भेजी जाती हैं, पर बहुत ही थोड़ी उमर में उनका पढ़ना बन्द कर दिया जाता है। इससे परदे और बालविवाह के कारण उन्हीं लोगों में स्त्रीशिक्षा का प्रचार नहीं होने पाता जिनमें यह हो सकता है। इन प्रान्तों में स्त्रीशिक्षा का काम विशेष कर मिशनरियों के हाथ में है, और मेथोडिस्ट एपिस्कोपेल मिशन ने इसके लिये बड़ा उद्योग किया है, और लखनऊ में औरतों के लिये एक कालेज भी स्थापित कर रक्खा है।

जिस देश के रहनेवाले कुछ सभ्य हो जाते हैं, उसमें प्रायः देखा गया है कि वहां की पुस्तकों की भाषा में उस देश के बोलचाल की भाषा से फरक पड़ जाता है। यह भेद या तो भाषा के व्याकरण में हो, या शब्दों में, या लेखप्रणाली में। प्रायः इन तीनों ही में कम या ज्याद: भेद पाया जाता है। लेखप्रणाली का अधिक सम्बन्ध इस विषय से नहीं है, वरन् ऊंचे विचारों से है; पर यह भी कह देना चाहिए कि इनसे पूरबी देश की बहुत सी

भाषाओं में योरप की भाषाओं की अपेक्षा अधिक रङ्गीलेपन और अत्युक्ति की जरूरत होती है। वाक्यरचना और मोहावरे के रुपों में व्याकरण के जो भेद पाए जाते हैं, वे प्रायः एक ही होते हैं। ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है, त्यों त्यों कुछ भिन्न भिन्न समूहों को बड़े बड़े समूहों में करके उन्हें एक ही नियम के आधीन करने की इच्छा होती जाती है। किसी जाति की भिन्न भिन्न भाषाएं, चाहे वे एक ही भाषा से निकली हों और चाहे वे जुदी जुदी भाषाएं हों, काल पाकर उन सबके रूप एक ही हो जाते हैं। पर यह बात उन देशों की वास्तविक या कल्पित भिन्नता पर भी निर्भर है जिनमें उस जाति के भिन्न भिन्न लोग रहते हैं, और इस एक रूप का हो जाना उतने ही देश में होता है जितने में कि आपस में मेल-मिलाप और व्यवहार रहता है। निस्सन्देह भाषा में बराबर फरक हुआ करता है, पर यह फ़रक उन दिनों में कम होता है जबकि विद्या के विषय की कुछ धूमधाम बनी रहती है। और छापे के प्रचार ने तो इन फ़रकों को और भी कम कर दिया है। भाषा में ये सब साधारण फ़रक तो आपही होते रहते हैं, पर इसके सिवाय उसमें दूसरी भाषाओं के मेल से और भी असाधारण फ़रक पड़ जाते हैं। अस्तु, जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है उसका तात्पर्य यह है कि, किसी जाति की बोलचाल की भाषा में कई तरह के व्याकरण के रूप पाए जाते हैं, और इन रूपों की भिन्नता का कम वा ज्यादः होना उस जाति के भिन्न भिन्न लोगों के मेलमिलाप पर, और देश के जिन भिन्न भिन्न भागों में वे रहते हैं उनमें बेरोक टोक के संसर्ग पर निर्भर है। किसी साहित्य के बनने में यह प्रायः देखा गया है कि कोई एक आदर्श चुन लिया जाता है, पर इस चुनाव के सिद्धान्त में जुदी जुदी भाषाओं में भेद होता है। इन प्रान्तों के इतिहास से मालूम होता है कि आजकल की भाषाओं में ऊपर कहे हुए परिवर्तन किस तरह से हो चुके हैं। भारतवर्ष में जिन मुसलमानों ने हमला किया, वे जुदी जुदी जातियों के थे, पर जान पड़ता है कि उन सभों ने अपना भाषा फ़ारसी रक्खी; अथवा इतना तो अवश्य है कि अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में उत्तरी भारतवर्ष के अधिक हिस्सों में फ़ारसी ही राज्य-भाषा पाई गई थी। यह तो निश्चय जानना चाहिए कि इन हमला करनेवालों ने शुरू ही से अपनी प्रजा की भाषा बोलने का उद्योग किया था, और यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि दिल्ली के आसपास जो भाषा बोली जाती है, उससे वे परिचित भी हो गए हों। इस प्रकार से पश्चिमी-हिन्दी एक नई भाषा निकली। इस भाषा में बहुत ही ज्यादः फ़ारसी के शब्द मिलाए गए और फिर फ़ारसी में भी तुरकी और अरबी के शब्द लिए गए थे। यह मिश्रित भाषा उर्दू अर्थात् सेना की भाषा कहलाई। उर्दू की उत्पत्ति के विषय में जुदे जुदे लेखकों की विपरीत रायें हैं। कोई तो कहते हैं कि उर्दू की उत्पत्ति मुसलमान लोगों के हिन्दुस्तानी भाषा सीखने के कारण हुई; और कोई कहते हैं कि टोडरमल की आज्ञा से हिन्दुओं ने फ़ारसी सीखने का जो उद्योग किया, उससे इसकी उत्पत्ति हुई। अस्तु, यह कोई आवश्यक बात नहीं है, और हम कह सकते हैं कि उर्दू की उत्पत्ति सम्भवतः इन दोनों ही कारणों से हुई होगी। जान पड़ता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के शुरु में, जब बृटिश सरकार के हाथ में पश्चिमोत्तर प्रदेश का बहुत सा भाग आगया था, उस समय यद्यपि अदालती दस्तावेज़ों में फ़ारसी लिखी जाती थी, पर राज्य करनेवालों और प्रजा में परस्पर व्यवहार का ज़रिया असिल में उर्दू ही था। फ़ारसी, जो कि यहां बोली नहीं जाती थी, उसको राज्यभाषा रखने में जो कठिनाइयां होती थीं, उनके दूर करने के लिये, सन् १८३७ ईस्वी में, भारतवर्ष की गवर्न्मेंट ने बङ्गाल और पश्चिमोत्तर प्रदेश में उसके स्थान पर इस देश की भाषा करदी। अब यहां पर एक दूसरी बात का कह देना, भी

आवश्यक है, जिससे कि इस प्रान्त की भाषा की उन्नति की है और अब भी कर रही है। ऊपर लिखी हुई बातों के सिवाय यहां के गद्य की भाषा और पद्य की भाषा में भेद होना कुछ असाधारण नहीं है। उर्दू को छोड़ कर यहां की और तीनों भाषाओं में से किसीमें भी अट्ठारहवीं शताब्दी तक गद्य, सच पूछिए तो, था ही नहीं। और उर्दू के गद्य और पद्य में भी थोड़ी ही पुस्तकें हैं। इस का कारण यह है कि हिन्दू लोग जब गद्य लिखना चाहते थे, तो संस्कृत में लिखते थे और मुसल्मान लोग ज्यादः करके फ़ारसी और अरबी में लिखते थे। पर मलिक मोहम्मद (सन् १५४०) तथा कुछ और ग्रन्थकार लोग अपने काव्य के ग्रन्थ उर्दू में भी लिखना बुरा नहीं समझते थे। उर्दू को राज्य-भाषा बनाने का जो निश्चय किया गया, उसके करीब दस वर्ष पीछे प्राइमरी शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान गया और तब उर्दू पढ़ाने के लिये पाठ्य-पुस्तकों के बनाने की आवश्यकता हुई, क्योंकि उस समय कोई पुस्तक पढ़ाए जाने लायक नहीं थी। इसके पहिले सन् १८०३ में लल्लू जी लाल ने फोर्ट-विलियम कालेज के डाक्टर गिलक्रस्ट (Gilchrist) के कहने से उच्च हिन्दी की उत्पत्ति की। उन्होंने व्रजभाषा में लिखे हुए भागवतपुराण के दसवें स्कन्ध को लेकर उसका उर्दू भाषा में अनुवाद किया, जिसमें वे विदेशी भाषा के शब्दों को काम में नहीं लाए। इस तरह से उच्च हिन्दी और उर्दू का व्याकरण एक ही है, सिवाय इसके कि वाक्य-विन्यास में कहीं कहीं पर बहुत थोड़ा भेद है, और अधिक भेद शब्दों के प्रयोग में है। आफ़िस की भाषा और ख़ासकर कचहरी की भाषा में, और साधारण बोलचाल की भाषा में, जितना फ़रक है वह तो अच्छी तरह से जाहिर ही है। हमारे कचहरियों के लेखकों का फ़ारसी में लिखने की पुरानी आदतों का छोड़ना कठिन था; ख़ास कर इसलिये कि, पूरबदेश के निवासी बिना काम के भी कठिन कठिन शब्दों का प्रयोग करना पसन्द करते हैं। उर्दू के स्वीकार किए जाने के कोई चालीस वर्ष पीछे तक वह केवल व्याकरण ही के हिसाब से यहां की भाषा थी, पर इस भाषा के शब्द साधारण बोलचाल के शब्दों से कहीं भिन्न थे। यहां इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि साधारण बोलचाल और काम के लिये भी शब्दों का अभाव था, क्योंकि इस अवस्था में अरबी और फ़ारसी के अधिक शब्दों को काम में लाने की ओर लोगों की अधिक रुचि थी। पर गवर्मेण्ट का सिद्धान्त यही रहा है कि कचहरी की भाषा, जहां तक सम्भव हो सके वहां तक, जन साधारण की भाषा ही हो जाय; और पिछले तीस वर्षों में इसका फल यह हुआ है कि कचहरी की भाषा बहुत कुछ साधारण हो गई है। क्योंकि जिस देश में शिक्षा बहुत से कामों के लिये आवश्यक समझी जाती है, वहां की अपेक्षा उस देश में गवर्मेण्ट की इच्छा अधिक पूरी हो सकती है जहां लोग थोड़ा लिख पढ़ लेने के सिवाय अधिक शिक्षा खाली सरकारी नौकरी के लिये पाते हैं। इसमें यहां तक सफलता हुई है कि एक दल उर्दू के ऐसे कवियों का भी बन गया है जो कि अपने पूर्वजों की नाईं बड़ी उच्च भाषा में कविता न करके सीधी सादी भाषा में करता है। पर उच्च हिन्दी की दशा इससे उलटी हो रही है। यह दिखलाया जा चुका है कि उर्दू स्वभाविक तरह से कई सौ वर्ष में एक स्वच्छ और सीधी सादी भाषा हो गई, पर उच्च हिन्दी बिलकुल बनावटी भाषा है। पिछले कुछ वर्षों के भीतर "नागरीप्रचारिणी सभा" नाम की एक सभा उच्चहिन्दी की त्रुटियों को दूर करने और हिन्दी की उन्नति करने के लिये स्थापित हुई है। इस सभा ने जो पुस्तकें छपवाई हैं उनसे जान पड़ता है कि, उसकी समझ में, जहां संस्कृत शब्द नहीं हैं उनकी जगह पर संस्कृत के शब्द काम में लाना ही भाषा को शुद्ध करना है। वह यह भी नहीं विचारती कि जिन शब्दों की जगह पर संस्कृत के शब्द काम में लाए जाते हैं, वे

साधारण आदमियों को अच्छी तरह मालूम है वा नहीं। यहां तक भी देखने में आता है कि जो संस्कृत ही के साधारण शब्द हैं, उनकी जगह पर शुद्ध संस्कृत के शब्द इसलिये काम में लाए जाते हैं कि पहिले वाले शब्दों को गांववाले काम में लाते हैं। अर्थात् यों समझिए कि तद्भव शब्दों की जगह पर तत्सम शब्द ठीक उसी तरह से काम में लाए जाते हैं जैसे कि कोई फ्रांसदेश का विद्वान Royal के स्थान पर Regal शब्द को ज्यादः अच्छा समझे। आजकल की प्रायः सभी नागरी पुस्तकों में इस तरह के उदाहरण बहुतायत से मिलते हैं। "हुक्म", "क़ायदा" "कागज़" आदि साधारण शब्दों की जगह पर "आज्ञा", "नियम", "पत्र" इत्यादि काम में लाए जाते हैं, जिनमें से कि पहिले दोनों शब्दों को तो कोई भी बिना लिखा पढ़ा गांव का रहनेवाला न समझेगा और तीसरा शब्द भी जिस शब्द की जगह पर लाया गया है, उससे ज्यादः प्रसिद्ध नहीं है। "पहिला" और "मानस वा मनई" शब्द भी ऐसे प्रसिद्ध हैं जैसा कि कोई शब्द हो सकता है, पर वे गंवारू समझे जाकर घृणा किए जाते हैं और उनकी जगह पर "प्रथम" और "मनुष्य" काम में लाए जाते हैं। हम दिखला चुके हैं कि यह बात वैसी ही है जैसा कि कोई अङ्गरेज़ 'Impenetrability of matter' की जगह पर 'Uuthorougsomeness of stuff' लिखे। नीचे एक उच्च हिन्दी की पुस्तक से कुछ अंश लेकर उसका अङ्गरेज़ी में अनुवाद किया जाता है और उसमें जहां जहां बिना काम के संस्कृत शब्द रक्खे गए हैं वहां वहां अङ्गरेज़ी में लेटिन के शब्द रक्खे जाते हैं जिससे यह बात अच्छी तरह से समझ में आजायगी–

"परन्तु उसमें एक कठिनाई पड़ती थी। मनुष्यमात्र की गणना की अपेक्षा थोड़ी ही गउओं को यह रोग था; इस कारण इस चेप का बहुधा अभाव बना रहता था" अनुवाद:–

"*Autem* there was a *difficultas* in this *Visus* (lit. "Regarded" or having regard to) the *numerus* of the *humanum genus*, few cows had this discase, for his *ratio* there continued to be *magna paucitas* of this serum."

यह आज कल की उच्च हिन्दी का एक ठीक नमूना है जो कि पुस्तकों, अख़बारों और स्कूलों की शिक्षा में प्रचलित है और हिन्दुस्तानी में इसका नाम 'भाषा' या 'ठेठ हिन्दी' है। अब तक बोलचाल की भाषा में तो इसने बहुत कम उन्नति की है, पर इसे पण्डित लोग बोलते हैं, और जो हिन्दू कुछ संस्कृत जानते हैं वे भी इसी तरह से बोलते हैं। पर जब वे किसी पण्डित से बात करते हैं, उस समय तो उच्च हिन्दी में बोलना जरूरी समझते हैं। ऐसे लोग प्रायः समझते हैं कि उच्च हिन्दी ही शुद्ध हिन्दी है और इस प्रान्त की सब भाषाएं उसीके बिगड़े हुए रूप हैं, जैसा कि "भाषा" वा "ठेठ" शब्द से जान पड़ता है। मुसलमानलोग ठीक इसी तरह से सब भाषाओं को उर्दू का अपभ्रंश समझते हैं। उच्च हिन्दी का बनावटी होना तो ठीक इसीसे समझ लीजिए कि ऊपर लिखे हुए हिन्दी के वाक्यों में से जिन ९ शब्दों का लेटिन में अनुवाद कियां गया है उनमें से केवल तीन शब्द मेरे आफ़िस के दो हिन्दू क्लार्कों की समझ में आसके। इनमें से एक तो एन्ट्रेन्स पास था, और नागरी तो दोनोंही जानते थे, पर उच्च हिन्दी में किसीने शिक्षा नहीं पाई थी। ऊपर के तीनों वाक्यों में से एक क्लार्क तो एक वाक्य का अनुवाद कर सका और दूसरे ने तीनों में से एक भी नहीं समझा। इस प्रान्त की भाषा में एक और भी विचित्रता है, जिसको एक हिन्दू डिप्टी कलेक्टर, जो पूरबी हिन्दुस्तान के रहनेवाले हैं और जिन्होंने बिहार और पश्चिमी हिन्दुस्तान में काम किया है, यों वर्णन करते हैं—

"जब कभी कोई हिन्दुस्तानी सज्जन किसी विदेशी वा किसी दूसरे हिन्दुस्तानी सज्जन से भी बात करेगा तो वह उर्दू में बोलेगा। जब वह किसी गंवार वा बिना पढ़े आदमी से बात करेगा तो भी उर्दू ही में करेगा। और जब वह अपने नौकरों

वा घर के लोगों से बात करेगा तो भी उर्दू ही में करेगा। यदि वहां कोई अनपढ़ बाहरी आदमी वा कोई दूसरी जाति का आदमी हो, वा ऐसा आदमी हो, जो उसके गांव वा कुटुम्ब का न हो, जैसे मैं अपने मित्रों, मातहतों, अर्दलियों, और दूसरों के सामने अपने नौकरों से भी उर्दू में बातचीत करता हूं, अपनी स्त्री और भाई बन्धु से, अपने गांव के काश्तकारों से और अपने घर के नौकरों से शुद्ध और सीधी पूरबी हिन्दी बोलता हूं, यही दशा संयुक्तप्रदेश के हर एक हिन्दू की है, और इसके पूरबी भाग के लोग तो एक सीढ़ी और चढ़के अपने हिन्दू मित्रों में बिहारी तक भी बोलते हैं। यह दशा केवल हिन्दुओं हो की नहीं है, वरन् गांव के रहनेवाले सब मुसलमानों में और कुछ नगर के रहनेवाले मुसलमानों को भी है। अभी हाल में मैं एक दिन रेल में यात्रा कर रहा था, जिसमें अवध के एक बड़े इज्जतदार तअल्लुक़दार भी थे। उनके साथ एक दूसरा मुसलमान भी था जो कदाचित् उनका सम्बन्धी हो और निस्सन्देह उनके इलाके का नौकर था। ये महाशय मुझे नहीं जानते थे, और न दूसरे एक बङ्गाली महाशय को ही जानते थे जो कि हम लोगों के साथ बैठे थे। कुछ देर तक वे अपने मुसलमान साथी से अपने इलाके के काम काज की बातें शुद्ध पूरबी हिन्दी में करते रहे, जब तक कि हम लोगों ने एक दूसरे सें (निस्सन्देह उर्दू में) बातचीत करना नहीं शुरू किया। मैं जिस समय यह पत्र लिख रहा था, उसी समय एक प्रतिष्ठित मुसलमान सज्जन, जो कि अंग्रेजी पढ़े लिखे एक डिप्टी कलेक्टर थे और अब छुट्टी पर थे, मुझसे मिलने आए। हमलोग इसके पहिले एक दूसरे को नहीं जानते थे। हम लोग कुछ अंग्रेज़ी मिली हुई उर्दू में बात चीत करते रहे; पर वह एक गांव के रहनेवाले हैं और पिछले दो तीन महीने उसी गांव में रहकर आए हैं, इसलिये २० मिनट के भीतर भीतर उनके मुंह से कई बार भूल से पूरबी हिन्दी निकल गई।"

अतएव इससे ये बातें जान पड़ती हैं। सर्व साधारण लोग, और अपने घर में पढ़े लिखे लोग भी, ख़ास कर यदि वे हिन्दू हों तो, स्थानिक भाषा बोलते हैं। उन जगहों के लिखे पढ़े लोग भी घर पर छोड़ कर और सब जगह उर्दू बोलते हैं, जहां की भाषा उर्दू नहीं है। पद्य या तो उर्दू में और या पश्चिमी हिन्दी की ब्रजभाषा में लिखा जाता है। इसके लिये पूरबी हिन्दी अब बहुत काम में लाई जाती है, पर इसीके एक प्राचीन रूप को तुलसीदास काम में लाए हैं, जिनकी बनाई रामायण इस प्रान्त के हिन्दुओं की बाइबिल समझना चाहिए। बिहार की भोजपुरी भाषा साहित्य के कामों में कभी नहीं लाई गई। यहां की तीनों भाषाओं में बहुत सी कविता है जो कि कंठस्थ सुनी जाती हैं और जिसे सिवाय अन्वेषी विदेशियों के और किसीने कभी नहीं लिखा है। आजकल के पद्य के लिये ब्रज की भाषा इसलिये चुनी गई है; क्योंकि लोग समझते हैं कि उस भाषा में बड़ा लालित्य और अत्यन्त सुन्दरता दिखलाई जा सकती है। शायद यह विचार इसलिये है कि पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों के वैष्णव आचार्यों में से बहुतों ने, और ख़ास कर आगरे के अन्धे कवि सूरदास ने, उसी भाषा में कविता की है।

इन बहुत तरह की भाषाओं होने के कारण जो दिक़तें पड़ती हैं, वे इस कारण कम हो जाती हैं कि यदि परिचित शब्द काम में लाए जांय तो प्रायः इस प्रान्त के सब हिस्सों के लोग उर्दू और उच्च हिन्दी के व्याकरण के रूपों को अच्छी तरह समझ सकते हैं। हां, पहाड़ियों में, पश्चिमी हिन्दी के बुन्देली भागों में, और बिहार में बहुत से ऐसे लोग भी पाए जाते हैं जो इन्हें कठिनता से समझ सकते हैं। यह भी याद रखना चाहिए कि इस प्रान्त के सब हिस्सों के अधिकांश लोग किसी विदेशी से बातचीत करने में स्थानिक रूपों का प्रयोग करते हैं, पर जो शब्द वे काम में लाते हैं वे कई भाषा के मिले हुए होते हैं। दोनों मुख्य भाषाओं

में से उर्दू का प्रचार बहुत ज्यादः होता जाता है और उसके लिखने की भाषा उसके बोलचाल की भाषा के बहुत निकट आती जाती है; पर उच्च हिन्दी का व्याकरण यद्यपि एकही है, पर उसमें जैसे शब्द काम में लाए जाते हैं उसके कारण वह उन पढ़े लिखे लोगों की भी समझ में नहीं आती जो संस्कृत न जानते हों, या जिन्होंने उसकी शिक्षा स्कूल में न पाई हो। और उसकी सम्भावना किसी बोलचाल की भाषा से भी अधिक भिन्न होते जाने की है। विदेशी भाषाओं में से फ़ारसी का उर्दू के कोष पर बहुत कुछ असर पड़ा है, और उसका कुछ प्रभाव शब्दों के विन्यास पर भी पड़ा है। आजकल उर्दू पर अंग्रेज़ी का भी कुछ असर पड़ रहा है, जिसका कारण यह है कि अंग्रेज़ी ही उच्च-शिक्षाओं का मुख्य द्वार है। यह असर ख़ास कर उसके कोष पर पड़ा है, और वह ऐसी दशाओं में निस्सन्देह स्वाभाविक भी है, जहां कि अंग्रेज़ी राज्य के शुरू होने ही से उन भावों के प्रगट करने पर जो पहिले पहल उनके सामने आए, पड़ा। जैसे, म्युनिसिपेलिटी, टाउन हाल, मेम्बर, रेल, बोतल आदि साधारण शब्द हो गए हैं। वह पांडित्य दिखलाने की इच्छा, जिसके कारण चालीस वर्ष पहिले उर्दू की और आजकल हिन्दी की घृणा की गई है, वही नीचे लिखे हुए तरह के वाक्यों का भी कारण है–

"इस एविडेन्स में बहुत डिस्क्रुपेन्सी हैं और निहायत इम्पोरटेंण्ट बला यह कि ... ..."

यह ध्यान रहे कि ऐसी भाषा किसी अंग्रेज़ से बोलने में उसके सुबीते के लिये काम में नहीं लाई जाती, वरन् हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी आपस में भी ऐसी भाषा बोलते हैं। आजकल शिक्षा अंग्रेज़ी में दी जाने के कारण भाषा में अंग्रेज़ी के मोहावरे और बनावट की भी नकल की जाती है और किसी किसी हिन्दुस्तानी ग्रन्थकार के उर्दू ग्रन्थों में कहीं कहीं पर यह कहा जा सकता है कि यह वाक्य अंग्रेज़ी वाक्य का अनुवाद है। भाषा के दोनों मुख्य रूपों के भविष्यत का विचार करने में १८९१ की मनुष्यगणना की रिपोर्ट में, जो मिस्टर जे० आर० लोवेल के वाक्य से उद्धृत किए गए हैं, वे यहां पर फिर लिखे जाने लायक हैं–

"केवल उन्हीं शब्दों से नए बल से भाषा की पुष्टि की जा सकती है जो आजकल के लोगों प्रचलित हों। जिस भाषा को लिखने पढ़ने की भाषा कहते हैं, वह ज्यादः ही पण्डिताई से भरी और विदेशी होती जाती है, यहां तक कि अन्त में वह भाषा विचारों को जाहिर करने के लिये वैसी ही बेकाम हो जाती है जैसी कि माङ्क लोगों की लेटिन भाषा। ... ... जिस भाषा के शब्दों का प्रयोग कम हो गया है और जो जनसाधारण के बोलचाल के शब्दों को नहीं ग्रहण करती उस भाषा में कोई अच्छी और गम्भीर पुस्तक नहीं हो सकती ... ... शब्द सदाही बोलचाल से उठते जाते हैं, इसलिये जहां की भाषा नियमों से बहुत ही जकड़ दी जाती है, वहां के विचार बढ़ने के द्वार भी कम हो जाते हैं, और इसलिये वहां का साहित्य भी हृष्टपुष्ट पेड़ों की नांई न होकर चीनदेश के बौने पेड़ों की नांई हो जाता है।"

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि मोहावरे और शब्दों का प्रयोग जातिसम्बन्धी बात समझी जाती है। (इस बात को कई बार लिखने की आवश्यता नहीं है कि उर्दू और उच्च हिन्दी का व्याकरण साधारण रीति से एक ही है)। आज दिन भी कुछ मुसलमान लोग अपनी बोलचाल और पुस्तकों में जितने फ़ारसी और अरबी के शब्द भर सकते हैं उतने भर देते हैं, और कुछ लोग तो एक ऐसी भाषा में लिखना ही पसन्द करते हैं जिसे वे फ़ारसी कहते हैं, और जो आज कल की फ़ारसी से कोष में उतनी ही भिन्न है जितनी कि स्पेन्सर की "फेयरी क्वीन" टेनिसन से। इसी प्रकार से कुछ हिन्दूलोग भी संस्कृत के कोष को लूटपाट के साहित्य बनाना चाहते हैं। ऊपर लिखी हुई सभा ने यह भी प्रगट किया है कि

वह एक वैज्ञानिक कोष बना रही है; पर यह स्पष्ट है कि उसने इस पर ध्यान नहीं दिया कि नई नई वैज्ञानिक आवश्यकताओं के लिये योरप की आज कल की सब भाषाओं में यह निश्चय हो चुका है कि ग्रीक और लेटिन के शब्द काम में लाए जायं। इन बातों की असारता को बहुत से हिन्दुस्तानी लेखकों ने समझा है, और यहां पर भूतपूर्व राजा शिवप्रसाद का नाम लिया जा सकता है, जिसने लेखप्रणाली को सीधी बना कर उसे जनसाधारण की बोलचाल के निकट लाने का उद्योग बड़ी सफलता से किया। इस देश और दूसरे देशों के साहित्य के इतिहासों से यह स्पष्ट जाना जाता है कि जब लेखकों ने नित्य के बोलचाल की भाषा काम में लाई तभी उस भाषा की पूरी उन्नति हुई है, और यह कहा जा सकता है कि इसी नियम पर चलने से अब भी लाभ हो सकता है।

पिछले दस वर्षों में इन प्रान्तों में जितनी पुस्तकें छपीं, उनसे जान पड़ता है कि उनमें से सौ में पैंतालिस तो उर्दू की और फ़ी सैकड़ा चौतीस उच्च हिन्दी की थीं। इससे ऊपर लिखी बात की और भी पुष्टि होती है कि लेखनी द्वारा विचार प्रगट करने में उर्दू अधिक जनप्रिय होती जाती है।

